अक्टूबर, 2013
ISSN - 2321-3922

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

ISSN - 2321-3922

संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर, 2013

संस्थापक

श्री दयानन्द जायसवाल

संरक्षक

डॉ. विजय कुमार सिंह

प्रधान संपादक

डॉ. शीतल अवस्थी

संपादक

डॉ. अश्विनी

डॉ. जी. पी. सिंह

संस्थापक सदस्य

डॉ. राम किशोर शर्मा

श्री उमाकान्त भारती

ई. नन्दलाल यादव ''सारस्वत''

श्रीमती छाया पाण्डेय

श्री रवीन्द्र प्रसाद मोदी

स्थायी सदस्य

श्री अजय कुमार सिंह

श्री धनञ्जय प्रसाद मण्डल 'अजित'

श्री विनय कुमार

श्री शिवनन्दन प्रसाद सिंह

श्री सत्यदेवेश प्रसाद

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

कार्यालय प्रभारी

श्री अनूप किशोर

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक।

रचनाओं के लिए रचनाकार उत्तरदायी।

समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र भागलपुर।

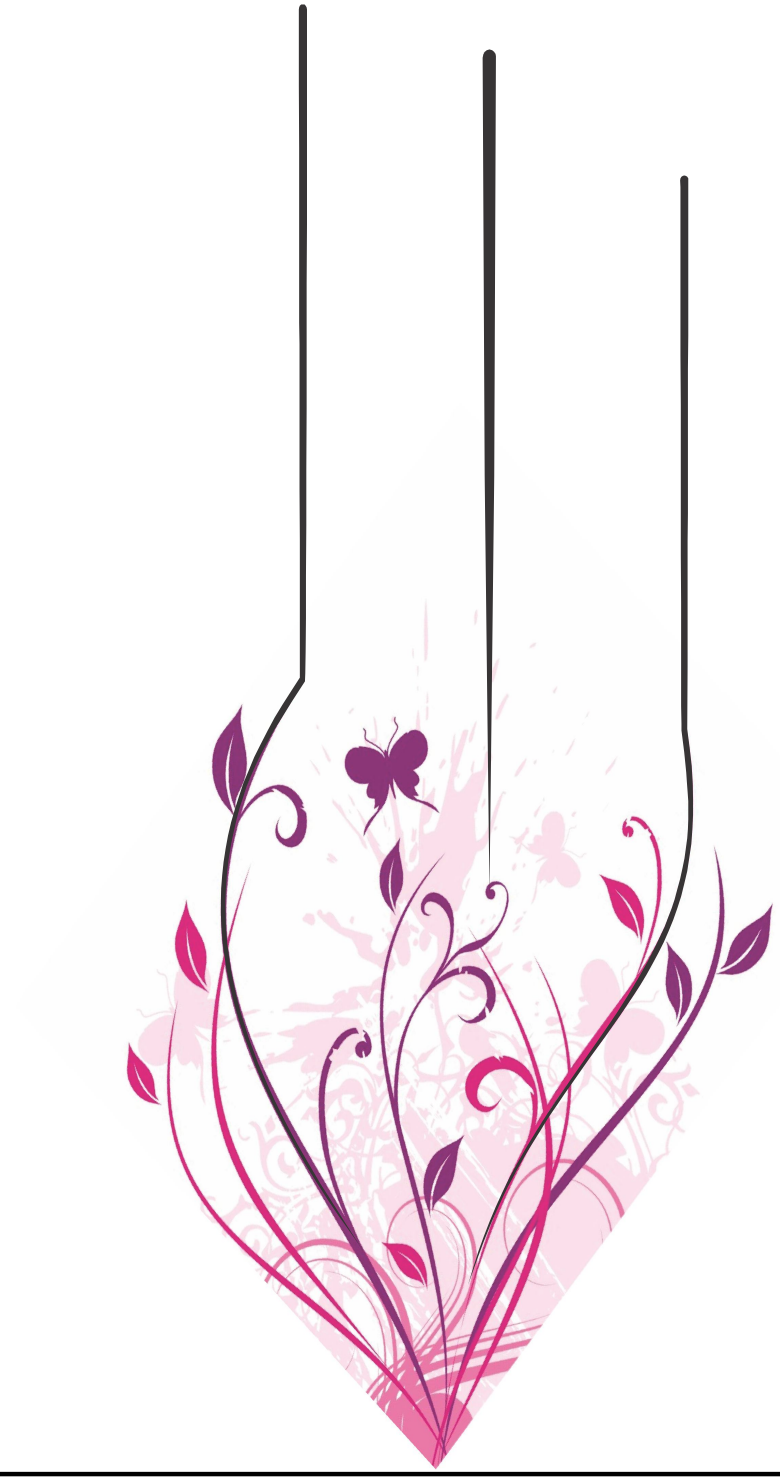

संपर्क : Sri Dayanad Jayswal

Mourya Jubilee Place, Zero Mile, Bhagalpur - 813210 (Bihar)

Mob. : 9931240303, 9570838880

Website : www.sambhavya.com | e-mail : dnjaysawal@sambhavya.com

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.com

आमंत्रण

'संभाव्य' अंतरराष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जिसका ई-संस्करण अमेरिका से होस्ट किया जा रहा है। यह संस्करण विश्वग्राम के निवासियों के लिए पूर्णतः निःशुल्क है।

सामाजिक सरोकार से संबंधित समसामयिक समस्याओं और उसके समाधान पर सार्वभौम एवं सार्वजनीन चिंतन करनेवाले साहित्यकारों से आग्रह है कि जनवरी-2014 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रचनाएं अपने पत्राचार के पता के साथ मेल करें तथा विश्वगग्राम-सौंदर्य-संवर्धन का सहभागी बनें।

डॉ. जी. पी. सिंह
संपादक, संभाव्य
gpsingh@sambhavya.com

अनुक्रम

क्र0 सं0				पृष्ठ सं0
1	संस्थापक की कलम से...	संदेश	दयानन्द जायसवाल	4
2	पुरोवाक्	संपादकीय	डॉ. शीतल अवस्थी	5
3	वर्तमान का सौन्दर्यबोध	आलेख	डॉ. अश्विनी	7
4	गुरूकुल बनाम् वर्तमान शिक्षा-पद्धति	वैचारिक लेख	डॉ. जी.पी. सिंह	9
5	ग़ज़ल	ग़ज़ल	अभिनव अरूण	10
6	ग़ज़ल	ग़ज़ल	अशोक मिज़ाज़	10
7	युगबोध और हिंदी साहित्य	समीक्षा	डॉ. बहादुर मिश्र	11
8	प्रभु अर्ज	कविता	रवि कुमार गोंड़	16
9	समिधा	कहानी	शतदल मंजरी	17
10	यादों की महक	कविता	शतदल मंजरी	20
11	मूल्यांकन	कविता	डॉ. रामकिशोर शर्मा	21
12	अभी बाकी है मेरी उड़ान	कविता	शेराज़ खान	21
13	चिर-प्रतीक्षा	कहानी	डॉ. हीरालाल प्रजापति	22
14	रानी	कहानी	डॉ. सुजाता चौधरी	24
15	कायर सत्य	कविता	शशांक शुक्ल	28
16	मौत के हवाले	कहानी	अभय कुमार भारती	29
17	इतिहास : सभ्यता की पीड़ा	कविता	संयुक्ता गुप्ता	31
18	हम, हमारी आधुनिकता और बुजुर्ग	लघु निबंध	डॉ. सुनील कुमार परीट	32
19	तीसरी पीढ़ी	लघु कथा	डॉ. अनुज प्रभात	33
20	तीन कविताएँ	कविता	ई. दीप्ति शर्मा	34
21	समर्पण	कविता	सुमित्रा पारीक	35
22	समर्पण	कविता	छाया पांडेय	35
23	'डंडीर' और 'अरे जाने दो'	समीक्षा	दयानन्द जायसवाल	36
24	शिवाला गया है	कविता	डॉ. कमलेश द्विवेदी	38
25	शिक्षण में प्रेरणा का महत्व	मनोवैज्ञानिक लेख	प्रीति कुमारी	39
26	शोक	कविता	डॉ. मोनाज़िर हरगानवी	40
27	मर रही मानवता	कविता	उमाशंकर बालोदिया 'उदय'	40
28	प्रदूषित इंसानियत	कविता	अभिलेख द्विवेदी	40
29	लोकवाणी	प्रतिक्रिया	पाठकगण	41

संस्थापक की कलम से....

आज का युग विज्ञान एवं प्रौधोगिकी युग है। विश्व के सुदूर स्थान भी आज एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गये हैं। सात समुद्र पार बैठे व्यक्ति से आप आसानी से बातें कर सकते हैं, देख सकते हैं और कुछ घन्टों में ही वहाँ पहुँच भी सकते हैं। नित नूतन वैज्ञानिक अनुसंधान के परिणामस्वरूप विश्व के सभी राष्ट्र एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में आ रहे हैं तथा व्यापारिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी हो रहे हैं। व्यापारिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टिकोण से विश्व के अनेक राष्ट्र परस्पर अन्योन्याश्रित हो रहे हैं। आज किसी देश की किसी वस्तु विशेष के अधिक उत्पादन का प्रभाव तुरन्त ही दूसरे देशों पर पड़ने लगता है। अब वह समय नहीं रहा कि कोई देश चुपचाप अलग कोने में पड़ा रहकर अपना निर्वाह कर सके। ऐसी स्थिति में सभी आदि राष्ट्र पृथक-पृथक स्वयं के सर्वोत्तम होने का प्रचार करने लगें और स्वयं को अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा श्रेष्ठतम समझने लगें, तो परस्पर मैत्रीपूर्ण संबंधों को आघात पहुँचता है। इससे इतर मैत्रीपूर्ण संबंध सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक है कि अन्तरराष्ट्रीयता की भावना का अधिक प्रचार और प्रसार किया जाये। सभी राष्ट्र आपस में सहनशीलतापूर्वक जीवन व्यतीत करें तथा सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों का पालन करें तभी विश्व के समस्त राष्ट्रों में परस्पर मैत्रीपूर्ण संम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं।

आज के इस बदलते दौर में जबतक विश्व के सभी राष्ट्र विश्वग्राम के परिवार की भाँति नहीं रहेंगे, एक-दूसरे के सुख-दुख में हाथ नहीं बंटायेंगे, सहिष्णुता और सह-अस्तित्व को स्वीकार नहीं करेंगे, तबतक विश्व में सुख और शांति स्थापित नहीं हो सकती।

अतः यह ध्रुव सत्य है कि यदि आज का मानव सुखी और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहता है, तो उसे विचारों की संकुचित सीमाओं का परित्याग कर 'बसुधैव कुटुम्बकम्'' और ''विश्व बन्धुत्व'' की भावनाओं को विकसित करना पड़ेगा। जहाँ नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना आवश्यक है वहाँ अन्तरराष्ट्रीयता की भावना भी परम आवश्यक है, तभी समस्त विश्व एक परिवार की भांति रह सकता है।

* * *

संपादकीय

पुरोवाक्

संभाव्य का यह अंक प्रबुद्धजनों, शिक्षाविदों, प्रशंसकों, पाठकों आदि के सामने है। यह हर्ष का विषय है कि यह पत्रिका अपने पिछले अंक से बेहतर होती जा रही है। 'संभाव्य' जैसे एक शुद्ध साहित्यिक पत्रिका का अपने समय पर निखार के साथ प्रकाशित होते जाना एक तरफ प्रशंसनीय है तो दूसरी तरफ अनुकरणीय भी। आज के समय में बाजारवाद ने जीवन के हर क्षेत्र को सम्मोहित कर लिया है। हर क्षेत्र में अधिक से अधिक मुनाफा प्राप्त करने की इच्छा के कारण हिन्दी की पत्रकारिता के सामने संकटपूर्ण स्थिति बनी हुई है। कमाई के मामले में हासिये पर रहनेवाली पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी में छपनेवाली पत्रिकाओं के लिए यह चुनौतीपूर्ण स्थिति हैं, लेकिन हिन्दी पत्रकारिता के प्रकाशकों, संपादकों, पाठकों एवं लेखकों के उत्साह और लगन के कारण अभी बहुत चिन्ता एवं निराशा की बात नहीं है।

हिन्दी पत्रकारिता के भविष्य के बारे में आश्वस्त करने का जबरदस्त आधार यह है कि इसके पुरोधा लेखकों एवं निष्ठावान संपादकों ने उसे विश्वहित और मानवहित के भाव से मनुष्य को संस्कार देनेवाले स्तर तक पहुँचा दिया है। यह विश्व की, मनुष्यता की, समाज की ऐसी प्रहरी है जो सबसे पहले जागती है और कभी नहीं सोती है। इस कारण पत्रकारिता को चौथा खम्भा होने का मान मिला है। यह विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को अपने कर्त्तव्य में सजग रहने के लिए आवाज देती है।

स्मरणीय है कि निष्पक्ष और निर्भीक पत्रकारिता को दबाया नहीं जा सकता है। ब्रिटिश हुकुमत की कठोरता भी पत्रकारिता से जुड़े दीवानों को दबा नहीं सकी। अभेद्य रक्षाकवच एवं अपनी कूटनीति के बावजूद ब्रिटिश हुकूमत को डर था बस गाँधी के आन्दोलन एवं पत्रकारिता से। इसी कारण अपने मुलाज़िम जेम्स अगस्त हिक्की को नौकरी से हटाया ही नहीं, बल्कि देश निकाला दे दिया, क्योंकि वह एक समाचार पत्र का संपादक बना था।

दक्षेस सम्मेलन एवं ग्वालियर सम्मेलन इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी पत्रकारिता को कितनी लोकप्रियता प्राप्त है। इसी के साथ यह भी प्रोत्साहित करने वाली सूचना है कि पत्रकारिता महोत्सवों ने पत्रकारों को दिल खोलकर प्रतिष्ठा दी। दोनों सम्मेलनों ने यह भी सूचना दी कि विश्व के लगभग सभी देशों में हिन्दी बोली, पढ़ी और समझी जा रही है। हिन्दी भाषा के सम्मोहन का यह हाल है कि बंगलादेश के रंगकर्मी मुजीव साहब प्रेमचन्द की कहानियों के नाट्य रूपान्तरण को पूरे देश एवं बाहर भी घूम-घूम कर मंचन करवा रहे हैं।

यह बतलाने की जरूरत नहीं कि हिन्दी पत्रकारिता का मूल भाव राष्ट्रप्रेम है। इसी कारण हिन्दी पत्रकारिता गुलामी के दौरान आजादी में अपनी शक्ति दिखा चुकी है। आजादी की सुगबुगाहट का श्रेय हिन्दी के कवि एवं संपादक भारतेन्दु हरिश्चन्द को जाता है।

''आओ सब मिलकर...। रोओ भारत भाई,
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।''

इस कविता की पुकार ने ऐसी अलख जगाई कि देश की आजादी आँधी बन गई। भारतेन्दु की कविता ने देश के लिए सब कुछ होम कर देने का शहीदों की एक टोली पैदा कर दी।

आजादी के समय और आजादी मिल जाने के बाद हिन्दी पत्रकारिता का देशप्रेम कम नहीं हुआ। हिन्दी पत्रकारिता देश की किसी समस्या के समय देश को जगाने में कोई कसर नहीं रखी।

आजादी के बाद देश के तपे-तपाये नेताओं में कुछ बहुत ही बूढ़े हो गये कुछ बहुत ही बीमार हो गये कुछ दिवंगत हो गये। नतीजा हुआ कि देश में भ्रष्टाचार पनपने लगा। ऐसी परिस्थिति में भ्रष्टाचार को नेस्तनाबूद करने के लिए वैसा ही जुनून पैदा हो गया जैसा देश की गुलामी को खतम करने को था। संयोग से और देश के सौभाग्य से कृतिशेष जयप्रकाश बाबू जीवित थे, यद्यपि कि बेहद बीमार थे। उनकी अगुआई में भ्रष्टाचार के विरूद्ध अभियान प्रारम्भ हो गया। उस समय भी पत्रकारिता ने देशप्रेम का जलवा पैदा किया। स्व0 धर्मवीर भारती ने उस जलवा को जीवित रखने के लिए 'मुनादी' शीर्षक कविता धर्मयुग में छपवाई। आन्दोलन को तेज रखने के लिए स्व0 दुष्यन्त जी ने एक शेर लिखा -

''एक बूढ़ा आदमी है इस मुल्क में
या यूँ कहो अंधेरी कोठरी एक रौशनदान है।
कल नूमाइश में मिला वह, चिथड़े पहने हुए
मैंने पूछा नाम? बोला कि 'हिन्दुस्तान' है।''

बिहार के एक कवि स्व0 गोपी बल्लभ सहाय ने एक पत्रिका में छपवाई -

''नमक पचाते नमक हराम, भज लो राम मजालो राम।।''

उस कविता की महज दो पंक्तियों को सुनकर उस समय के एक कद्धावर व्यक्ति मारपीट करने को तैयार हो गये थे।

पत्रकारिता की इतनी प्रतिष्ठा इस कारण है कि भारतवर्ष की किसी भी बुरी स्थिति में अपना कर्त्तव्य नहीं भूलती। इस देश की सहज विस्वासी मानसिकता एवं चरित्र के कारण हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारे के बहाने जब देश पर हमला कर दिया तो हिन्दी पत्रकारिता युद्ध के अगले मोर्चे पर अपनी रचनाओं के साथ डटी रही। साभ्यवादी विचारधारा के पक्षधर स्व0 शिवमंडल सिंह 'सुमन' ने इस कविता की चन्द पंक्तियों से देश की जनता को जगाया - ''आजाद देश की कठिन परीक्षा हुई शुरू -

''कुर्बानी का फिर नया जमाना आया है,
फिर नई चुनौती बहशी हुनो की आई
फिर नये राष्ट्र ने भैरव राग बजाया है।''

'हल्दीघाटी' तथा 'जौहर ब्रत' महाकाव्य के रचयिता श्याम ना0 पाण्डेय ने अपनी कविता के कुछ पंक्तियों से जनता की रगों के लहू को गरमा दिया। लगभग निहत्थे सैनिक अंतिम दम तक लड़ते रहे।''

''यह तुंग हिमालय किसका है
उतुंग हिमालय किसका है।
मैंने कह दिया बहुत पहले
जिसमें पौरूष है उसका।''

बस इन चन्द पंक्तियों ने सीमा पर सैनिक और उनके पीछे जनता को ललकार दिया।

आज की गरीबी, भूखमरी, मंहगाई, बेरोजगारी आदि समस्याओं के लिए स्व0 सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' ने अपनी एक कविता में एक छिपी हुई दानवी शक्ति को सबकुछ के लिए जिम्मेदार बताया है।

''इस देश में एक आदमी है
जो रोटी बेलता है
एक दूसरा आदमी है, जो रोटी खाता है''
एक तीसरा आदमी है, जो न रोटी बेलता है न खाता है
वह रोटी से खेलता है।
मैं पूछता हूँ वह तीसरा आदमी कौन है?''

सुदामा पाण्डेय ने अपनी कविता में जिस तीसरे आदमी की चर्चा की है उसकी पहचान करने के लिए पत्रकारिता अपना कर्त्तव्य पूरा कर रही है और करती रहेगी।

वर्तमान का सौन्दर्यबोध

डॉ0 अश्विनी
संपादक, संभाव्य

बनायें - सजायें और संवारें सुन्दर वर्तमान को। भूल जायें गुजरे अतीत को। स्वागत करें, देखें-जानें सुनहरे भविष्य को। परन्तु सम्पूर्ण संभावनायें इस बात पर निर्भर करती हैं कि हम टूटते-बिखरते मानक परम्पराओं, तथ्यों, प्रथाओं एवं सनातन मूल्यों तथा नियमों को सर्वसमावेशी चिंतन - चेतना दृष्टि से देखें और सामाजिक सरोकारों एवं राष्ट्रीय चिंताओं से जोड़कर पापपूर्ण तथा भ्रामक स्थिति से उबरें और उबारने का सार्थक पहल करें।

जीवन परम गीत है जिसे सुगमता से गाया जा सकता है, यह मधुर संगीत है जिसे मनोयोग से सुना जा सकता है। जीवन एक सम्यक प्रार्थना एवं पुकार है जिसमें ध्यानस्थ हुआ जा सकता है। यह एक थिरकन एवं सहज स्फुरणा है जिसे महसूस किया जा सकता है। यह एक सुखद आनंद स्थिति है जिसमें डूबा जा सकता है। जीवन एक महारास एवं महाभाव है जिसमें एकाकार हुआ जा सकता है। शब्द जब दर्शन बनता है, ज्ञान जब समर्पण बनता है तभी पुरूषार्थ का उदय होता है और तभी अप्रतिम भाव-संवेदना की सारभूत सत्ता का आभास होता है। जीवन खोयी और गूंगी वेदना नहीं, असीम आनंद स्रोत एवं ओज है जो परम पावनी गंगा की तरह अविरल निर्मल बहती चली जाती है... अनबोले, अनकहे गंतव्य की ओर।

वर्तमान का सौंदर्यबोध ही जीवन का सत्य एवं सत्व है और सत्य स्वयं एक प्रमाण है - इसे प्रमाणित करने की चेष्टा सर्वथा एक भूल होगी। आज व्यक्ति आत्मिक नहीं, दिमागी ज्यादा है, स्वाभिमानी नहीं, अहंकारी ज्यादा है। अहंकार एक खतरनाक खेल है जो पागलपन की आखिरी स्थिति है जिसका जीवन से तारतम्य एवं समायोजन टूटा हुआ होता है। ऐसी परिस्थिति में क्षण-क्षण में सौन्दर्यबोध ही शाश्वत जीवन - यात्रा है जिसमें लय, गति, स्वर, संगीत एवं परिवर्तन की गूंज तथा ध्वनि अभिव्यंजित है जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने का एक आग्रह-अनुराग है। हम एक नये विहान को धरती पर उतारने का एक स्तुत्य प्रयास करें एवं विभिन्नता में सम्पूर्णता की तलाश करें ताकि सुन्दर विश्वग्राम बनाने का महायज्ञ सफल हो एवं वर्तमान को सुंदर बनाने के जाग्रत संदेश से लोगों में नई ऊर्जाशक्ति को सम्पूर्ण आयाम मिल सके।

आज हम जहाँ खड़े हैं, आयातित उपभोक्तावादी संस्कृति - संस्कार की त्रासद एवं वीभत्स स्थिति जीने को बाध्य हैं। हम धरातल पर मजबूती से खड़े नहीं हैं - आकाश में उड़ते चले जा रहे हैं। राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन की शून्यता तथा मूल्यहीनता के कुप्रभाव को हम नहीं रोक पा रहे हैं। जाने - अनजाने हम अंधी दौड़ में शामिल हो रहे हैं। हमारे पैर लड़खड़ा भी रहे हैं - सांसे फूलती चली जा रही हैं, मगर हमें पता नहीं हम क्यूं दौड़ रहे हैं - कहाँ जा रहे हैं। कभी-कभी लगता है कि कहीं हमने किराये के पाँव तो नहीं लगा लिये हैं। कहीं हम दोहरे मूल्यों एवं दोहरे मानदण्डों के शिकार तो नहीं हो गये हैं...

आज देश एवं विश्व के सामने कुछ ऐसे गंभीर सवाल एवं कठिन चुनौतियां है जिसका समाधान संघर्षपूर्ण चरित्रबल से ही संभव दीखता है। चारों तरफ खतरा है, तमस - अंधेरा है, संत्रास एवं क्रंदन-क्रोध है। हमें विचार करना है - जानना है कि आज के संदर्भ में बेहतर वर्तमान एवं शानदार भविष्य की मूल अवधारणायें कैसी होनी चाहिए। आखिर स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन की प्राथमिकताओं एवं मौलिक बुनियादी सूत्रों को हमनें हाशिये पर कहाँ खो दिया है। हम हो रहे राष्ट्रीय जीवन में हादसे - दुर्घटनाओं तथा घात-प्रतिधातों के प्रति सतर्क एवं सक्रिय क्यों नहीं हैं - हमारे चेहरे पर शानदार मुस्कान एवं आत्मविश्वास बोध की स्पष्ट लकीरें तथा फौलादी जिस्म का भाव गुम हो गया है। हमारी धमनियों का रक्त ठंडा एवं शिथिल पड़ गया है। पराक्रम एवं पुरूषार्थ की विरासतगाथा, वीर - वीरांगनाओं की अमरकीर्तिगान तथा ऋषि - मनीषियों, साधकों, संतों की संजीवनी मंत्रों एवं सूत्रों को हमने खो दिया है।

यह आसन्न नैराश्यपूर्ण स्थिति एवं छाये धुंध की गहरी घटा समाप्त होगी। निकट भविष्य में हम मजबूती के साथ उबरेंगे और उभरेंगें क्योंकि हमने जान लिया है वर्तमान के सौन्दर्य सूत्र शास्त्र को जिसमें गतिशीलता एवं जीवंतता के अनुभूत मंत्रों की

बानगी का सुन्दर समन्वय एवं गंभीर अनुभाव की झलक है।

हमारी धारणा रही है कि प्रतिकूलताओं में ही नये जीवन के उदय एवं निर्माण की समस्त संभावनाओं के बीज - सूत्र निहित हैं। जरूरत है हम अपने कर्तव्यपालन में इमानदार और संवेदना प्रबल बनें। क्षरित मूल्यों तथा उसूलों की रक्षा हेतु जाग्रत स्तम्भ बनें और सदैव ऐसे ही कठिनसाध्य दायित्वों एवं कर्तव्यों का निर्वहन करें।

यहाँ कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि अनुभूतिजन्य चैत्य पुरूषों, बौद्धिकजनों एवं प्रबुद्धजनों के अर्न्तचिंतन - मंथन से ही खंडित वर्तमान तथा सनातन सत्ता मूल्यों एवं आदर्शों की रक्षा संभव है। आज वैश्वीकरण जो वशीकरण सा लगता है, उसका भूत आम-अवाम् के सिर पर नाच रहा है। बदलाव एवं भटकाव की आंधी, फैशन, फरेब और दिखावे की कुटिल साजिशों के बीच हम अपनी अस्तित्व - अस्मिता की रक्षा हेतु नये रास्ते और नई रोशनी की तलाश में ऊर्जा शक्ति को नष्ट करते जा रहे है।

आज धोखा, विडम्बना एवं विसंगति जैसे अनेक अनुतीत ज्वलंत सवाल एवं समस्यायें हमारे सामने खड़ी हैं। हमने अपनी दुर्दशा को स्वयं आमंत्रण देकर इस स्थिति को स्वीकार लिया है, क्योंकि हमने सच बोलना और जानना छोड़ दिया है। इस धरती पर जो सच बोलता है वही सबसे साहसी एवं पराक्रमी योद्धा है, लेकिन सच बोलने का खतरा कोई मोल लेना नहीं चाहता है। हकीकत तो यह है कि सच स्वयं में सबसे बड़ा शस्त्र एवं शास्त्र है, इसे धारण करना साधारण नहीं।

तथाकथित नगर या शहर जिसे हम विकसित गाँव भी कह सकते हैं - आधुनिक मूल्यों एवं बोध को पाने की कोशिश में निरंतर लगे हुए हैं। व्यक्ति नवअभिजात्य अपसंस्कृति के दलदल में धंसते चले जा रहे हैं और अपने वजूद की रक्षा एवं अपनी पहचान पर गहराते संकट का रोना रोते चले जा रहे हैं। पूंजीवाद की चमक एवं भ्रामक नीतियां और गलत सोच के आइने में खुद के दरकते चेहरे, सजीवता एवं शराफत की अस्वाभाविक भावदशा तथा गहराते काले बादलों में आकुल - व्याकुल आत्माएं, इस बात का पुख्ता प्रमाण है कि आदमी हाहाकार एवं कोलाहल के बीच खुद को तलाश रहा है। लगता है आदमी अपने संघर्ष के चरित्र एवं फौलादी ज़ज्बे को भूल गया है और समझौतापरस्ती की लम्बी चादर तानकर श्मशानी सन्नाटे में कहीं खो गया है। उनका जाँबाजी हुँकार एवं संग्रामी तेवर अनर्गल सुविधाओं के मकड़जाल में उलझकर कहीं दम तोड़ रहा है। ज़ज्बाती समझौते की जमीन पर खड़े होकर हम किसी को भी नसीहत दे सकते हैं मगर उसे ललकार नहीं सकते, क्योंकि हमने सुविधाभोगी एवं अवसरवादी चरित्र विकसित कर लिया है। हम संग्रामी या योद्धा की भूमिका में कहीं खड़े नहीं हैं, इसलिये हम गलत नीयत एवं नीतियों के विरोध में डटकर खड़े नहीं हो सकते।

जिसने प्रेम का अमृतपान नहीं किया, दीवाना न हुआ, जो संवेदना की अतल गहराई में नहीं उतरा, सम्बन्धों की मिठास एवं स्वाद के आनंद में नहीं डूबा, उसमें संस्कार - संस्कृति, त्याग - तेवर एवं चीजों को जानने-समझने की जिज्ञासुभाव एवं प्रखर दृष्टि का सर्वथा अभाव दीखता है। यह कोई पृथक मूल्यांकन नहीं या फिर किसी को लांक्षित अपमानित करने का मनोभाव नहीं है, बल्कि कठोर सच्चाई एवं तथ्यों की आधार स्थिति है। जीवन के विकास में समस्त संस्तुतियां एवं अनुसंधान का पुर्नमूल्यांकन आज के संदर्भ में अनिवार्य - सा लगता है।

वर्तमान का सौन्दर्यबोध एक समवेत उद्घोष है, हुँकार एवं प्रेम की आदर्श स्थितिबोध तथा चिंतन है, समकालीन सोच और आमजनों की जीवन शैली का स्वभाव, स्वरूप दर्शन है। यथार्थ की जमीन पर खड़ी कालजयी अनुभव एवं अन्यतम सौदर्यसत्ता स्थापना की पुकार तथा ससक्त अभिव्यक्ति का संभाव्य एक मजबूत प्रयास है।

मजहब-धर्म तो मानवोचित स्वीकृति एवं चिन्मय भाव है जो मनुष्य के आचरण एवं व्यवहार में प्रगट होकर मूढ़ वर्जनाओं एवं भ्रामक तथ्यों से ऊपर अभीष्ट की प्राप्ति हेतु सम्पूर्णता की ओर प्रवृत करता है। लोगों के मनोमस्तिष्क में व्याप्त संकीर्णताओं एवं अंधविश्वास के बंधनों को खोलने का पुरूषार्थ करना पड़ेगा। वायवीयता के जंगल में भटकनेवाले स्वनामधन्य व्यक्तित्व जो लिखास एवं छपास की बीमारी से ग्रस्त हैं, उन्हें जानना होगा कि इस चुनौतीपूर्ण दौर में सिर्फ बन्द कमरे में राष्ट्र एवं विश्व के ज्वलंत सवालों पर लिखना ही काफी नहीं है, बल्कि वर्तमान को सुंदर बनाने के लिए आगे आना होगा जो कल सुंदर अतीत बनेगा और भविष्यत को भी सुंदर बनाएगा।

❋❋❋

गुरूकुल बनाम् वर्तमान शिक्षा-पद्धति

डॉ.जी.पी.सिंह
संपादक, संभाव्य

सूचना तकनीकी, व्यावसायिक और रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रमों पर आधारित शिक्षा किसी व्यक्ति को किसी हद तक समृद्ध तो कर सकती है, लेकिन उसके अंदर मानवीय गुणों का विकास नहीं कर पाती। इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर व्यक्ति धीरे-धीरे अभियांत्रिक जीवन जीने लगता है और एक दिन मुस्कान की कीमत अदा कर खुशियाँ खरीदने की भीड़ में शामिल हो जाता है।

हर किसी को पता है कि नैतिक मूल्यों पर आधारित पाठ्यक्रम का दामन छोड़कर मशीनी शिक्षा से मानव नहीं बनाया जा सकता। यह सच है कि मशीन की कार्य - क्षमता मानव से अधिक होती है, पर यह भी सच है कि मशीन में मानव की तरह आत्मा नहीं होती, भावना नहीं होती जिसकी तलाश हर किसी को है।

मैग्ना कारटा, वर्धा बुनियादी योजना से लेकर डॉ0 डी0 एस0 कोठारी आयोग तक शिक्षा में सुधार को लेकर आयोग-दर-आयोग के गठन होते रहे और अब गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए सुधार का जिम्मा सर्वशिक्षा अभियान और राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के पास है, लेकिन मंजिल आज भी क्षितिज के पार है।

वस्तुतः शिक्षा का अर्थ 'सीखना' है। सीखना एक स्वाभाविक क्रिया है जिसे बच्चे प्रकृति से, परिवार के सदस्यों से, सामाजिक परिवेश से एवं गुरूजनों के सानिध्य से सहज ही सीखते हैं। इस प्रकार की परिवेशजन्य सीख को संस्कार कहा जाता है जिसे बच्चों में जन्म से कुछ ही वर्षों तक दिया जा सकता है। पश्चात् के दिनों में इस प्रकार से प्राप्त किए गए संस्कार को महज विस्तार मिलता है।

ईंग्लैंड के 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' में सुरक्षित दस्तावेज बताते हैं कि 1835 ई0 में भारत में 7,32,000 गुरूकुल संचालित थे जिसमें प्रत्येक छात्र को 18 विषयों की शिक्षा प्राप्त करने की अनिवार्यता थी। दस्तावेज में दर्ज़ परिणाम बोलते हैं कि 1835 ई0 में पूर्वी एवं मध्य भारत में 86% पश्चिम भारत में 98% उत्तर भारत में 82% एवं दक्षिण भारत में 100% शिक्षा थी। अफसोस कि गुरूकुल ध्वस्त कर रोज़-रोज़ बनती नई शिक्षा नीति में हमनें वर्तमान भारत में साक्षरता का सूचकांक मात्र 74.04% ही स्थिर कर पाया है।

परिणाम बताते हैं कि अब हमें गुरूकुल की ओर लौटकर देखना और सीखना चाहिए जहाँ शिक्षा को संस्कार के रूप में विकसित करने की व्यवस्था थी, जहाँ शिक्षा को व्यवहार में लाने की व्यवस्था थी, जहाँ व्यक्ति शिक्षित और दीक्षित होकर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का सौभाग्य हुआ करता था तथा जहाँ पशु-पक्षियों का आलंबन और आश्रय लेकर मानवोचित एवं न्यायोचित कर्त्तव्यों का ज्ञान दिया जाता था तथा जहाँ नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता ही जीवन का उद्देश्य हुआ करता था।

अतः हमें व्यावसायिक और रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रमों पर आधारित शिक्षा के साथ-साथ गुरूकुल की मूल्यपरक शिक्षा का संबल लेकर चलना होगा, छात्रों को अनुशासन का प्रशिक्षण देकर एक निश्चित नियमों के अनुरूप आचरण करने के योग्य बनाना होगा तथा शिक्षक एवम् अभिभावक को स्वयं वातावरण की तरह बनना होगा जहाँ प्रत्येक छात्र में सहजता और सरलता से मानवीय गुणों का विकास संभव हो सके। इस प्रकार की त्रिआयामी शिक्षा-पद्धति को अपनाकर ईंग्लैंड के 'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' में संरक्षित दस्तावेज के अनुरूप शिक्षा का सूचकांक पुनः हासिल किया जा सकता है।

ग़ज़ल

अभिनव अरूण
वरीष्ठ उद्घोषक
आकाशवाणी, वाराणसी

हमने कुछ पौधे लगाए नाम पाने के लिए
और जंगल काट डाले आशियाने के लिए

टंग गए हर छत हर एक मुंडेर पर पिंजरे मिया
हसरते सब मर गयीं चिड़िया चुगाने के लिए

अब खबर में, खेल में और ख़्वाब में बन्दूक हैं
कौन आगे आएगा बचपन बचाने के लिए

पर्वतों ने आदमी को घर बनाता देखकर
बादलों को दे दिया ठेका भगाने के लिए

क्यों करें बर्दाश्त बादल, आखिर वो फट पड़े
हम हदों को लांघते थे मौज पाने के लिए

उन फिराकों, साहिरों, फैजों ने हमको सीख दी
एक शायर शायरी करता ज़माने के लिए

आदमीयत का तरक्की से है उल्टा वास्ता
झुग्गियां गिर जायेंगी, होटल बनाने के लिए

फोन ने इंसान को दे दीं हजारों मोहलतें
एक मैसेज कर दिया रिश्ता मिटाने के लिए

ये गुलों की बेरूखी है या दवाओं का असर
तितलियाँ आती नहीं मकरंद पाने के लिए

❋❋❋

ग़ज़ल

अशोक मिज़ाज़
सागर, मध्यप्रदेश

ज़रा सा नाम पा जाएँ उसे, मंज़िल समझते हैं,
बड़े नादान हैं मझधार को साहिल समझते हैं,
अगर वो होश में रहते तो दरिया पार कर लेते,
ज़रा सी बात है लेकिन कहाँ गाफिल समझते हैं
अकेलापन कभी हमको अकेला कर नहीं सकता,
अकेलेपन का हम महबूब की महिफ़ल समझते हैं,
बड़े लोगों के चेहरों पर शिकन भी आ नहीं सकती,
कोई कालिख भी मल दे तो उसे वो तिल समझते हैं,
अजब बस्ती है इस बस्ती में सब रंगदार हैं शायद,
शरीफों को तो वो पैदाइशी बुझदिल समझते हैं,
मिज़ाज, अपना, फ़क़ीराना है फिर भी शुक्र है यारों,
हमें भी लोग अपनी भीड़ में शामिल समझते हैं...

❋❋❋

'युगबोध और हिन्दी साहित्य' : एक उपयोगी पुस्तक

डॉ. बहादुर मिश्र
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

समय-समय पर लिखित व प्रकाशित कुल इक्कीस समीक्षात्मक निबंधों का संग्रह 'युगबोध और हिन्दी साहित्य' कवि-समीक्षक (डॉ.) राजेन्द्र पंजियार की आठवीं पुस्तक है। इसके पूर्व उनकी तीन मौलिक और चार संपादित पुस्तकें प्रकाशित होकर प्रशंसित हो चुकी हैं। उनकी मौलिक पुस्तकों में दो काव्य-संग्रह और एक समीक्षा-ग्रंथ है।

आलोच्य संग्रह का पहला निबंध 'धारदार व्यंग्य के कवि संत कबीर' है तो अंतिम 'छायावादी काव्यों में नारी'। दोनों के बीच तुलसी, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, गोपाल सिंह नेपाली, शिवपूजन सहाय, जैनेन्द्र, राम कुमार वर्मा, लक्ष्मी-नारायण सुधांशु, जानकी वल्लभ शास्त्री जैसे वरेण्य साहित्यकारों के साहित्यिक अवदान को केन्द्र में रखकर अठारह निबंध रखे गए हैं। उन्नीसवाँ निबंध अनुवाद-विषयक है।

कबीर-विषयक प्रथम निबंध में विद्वान् लेखक (डॉ.) राजेन्द्र पंजियार ने कबीर को सर्वकालीन श्रेष्ठ, व्यंग्यकारों में एक माना है। उन्हीं के शब्दों में- ''व्यंग्य वह है, जहाँ कहने वाला अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर व्यंग्य करने वाले को जवाब देने में वह स्वयं को और भी उपहासास्पद स्थिति में पाता हो। कबीर ऐसे ही व्यंग्यकर्त्ता थे। (क्योंकि) उनमें सत्यनिष्ठा का तेज, दृढ़ विश्वास का बल और निर्मल हृदय का नैसर्गिक सौन्दर्य था।'' (पृ. 11)

कबीर ने जहाँ हिन्दुओं के धार्मिक बाह्याडंबर व सामाजिक विरूपताओं; जैसे-छुआछूत पर तीखे व्यंग्य किये हैं, वहाँ मुसलमानों के धार्मिक पाखंड पर भी। लेखक ने उपयुक्त उदाहरण देकर कबीर के व्यंग्यकार-रूप को दिखाने का प्रयास किया है।

'सूफी संत और हिन्दी साहित्य' शीर्षक निबंध में विद्वान् लेखक ने सर्वप्रथम 'सूफी' शब्द का तात्त्विक विश्लेषण करते हुए सूफी परंपरा पर विशद प्रकाश डाला है। तदुपरांत हिन्दी के सूफी कवियों की काव्य-कृतियों पर विचार किया है। लेखक की स्थापना है कि लगभग सारे सूफी काव्य लोकाश्रित हैं। नवीनतम अनुसंधान के अनुसार, अब तक पचपन सूफी कवियों की अस्सी काव्य-कृतियों का पता चला है, जिनमें पैंतीस भारतीय हैं, शेष विदेशी। इसी आधार पर डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के उलट सूफी काव्य-परंपरा को विशुद्ध भारतीय माना है। डॉ. पंजियार का मत इससे अलग नहीं है। इतना ही नहीं, आचार्य शुक्ल ने जहाँ 'मृगावती' (1501) के रचनाकार कुतबन को पहला सूफी कवि माना है, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'सत्यवती कथा' (1500) के रचयिता ईश्वरदास को, डॉ. रामकुमार वर्मा तथा डॉ. शिवकुमार शर्मा ने 'चंदायनकार' (1379) मुल्लादाउद को प्रथम सूफी कवि सिद्ध किया है, वहाँ डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने हंसावली (1370ई.) के रचनाकार असाइत को पहला सूफी कवि ठहराया है। डॉ. पंजियार ने डॉ. गुप्त की मान्यता को प्रश्रय देते हुए, अपने इस निबंध में असाइत को ही सूफी काव्य-परंपरा का सूत्रधार बताया है।

दूसरे निबंध की ही तरह तीसरी निबंध 'नीति-उपदेश का औचित्य और तुलसीदास' भी दो हिस्सों में विभक्त हैं - पहला, नीति-उपदेश का औचित्य और दूसरा, तुलसी। पहले हिस्से की शुरूआत काव्य प्रकाशकार मम्मट द्वारा बताए गए काव्य-प्रयोजन से करते हुए लेखक ने भक्तिकालीन नीतिपरक काव्य के विविध रूपों के साथ-साथ उपदेश के विविध प्रकारों; यथा - प्रभु-सम्मित, सुहृद-सम्मित तथा कान्ता-सम्मित पर प्रकाश डाला है। फिर उन्होंने साहित्य से प्राप्त उपदेश को कान्ता-सम्मित कोटि के अन्तर्गत रखते हुए नीत्युपदेश के औचित्य पर विचार किया है। उन्हीं के शब्दों में - ''प्राचीन काल से ही नीति और उपदेशपरक साहित्य-लेखन की अत्यंत समृद्ध परम्परा रही है।

दरअसल, आदिकाल से ही भरतीय चिन्ताधारा सांसारिकता की अपेक्षा पारलौकिक जीवन और पारमार्थिक तत्वों को विशेष महत्त्व प्रदान करती रही है। काम-क्रोधादि षड् विकारों से बचने एवं परोपकार, दया, क्षमा, करुणा, तप, संयम, दान, भगवच्चिन्तनादि की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा उनके द्वारा आरम्भ से मिलती रही है। (पृ.21)

निबंध के दूसरे हिस्से में लेखक ने तुलसी-साहित्य, विशेषतः रामचरितमानस, विनयपत्रिका तथा दोहावली में नीत्युपदेशक छन्दों अथवा अंशों को उद्धृत करते हुए विश्लेषित करने का प्रयास किया है;

यथा -

बिनु सत्संग न विवेक होई।

x x x

राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।। (मानस)

मुखिया मुख सों चाहिए, खान-पान कहु एक।

पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।। (दोहावली)

इन ग्रंथों के अलावा गीतावली, कवितावली, पार्वती मंगल, जानकी मंगल इत्यादि में भी गोस्वामी तुलसीदास ने यथावसर नीत्युपदेशमूलक छन्दों का प्रयोग किया है। निबंध में इन पुस्तकों का उपयोग न हो पाने से पाठकों को थोड़ी निराशा हो सकती है।

'क्रान्तदर्शी कवि निराला' नामक निबन्ध में लेखक ने कवि निराला की क्रान्तदर्शिता को मुख्य रूप में, जबकि गद्यकार निराला की क्रान्तदर्शिता को गौण रूप में विवेचित किया है। लेखक के अनुसार क्रान्ति का अर्थ है आमूलचूल परिवर्तन, मृतप्राय परंपरा का भंजन। कवि निराला की क्रांतदर्शिता मुख्यतः उनकी बादल राग, कुकुरमुत्ता, आवाहन, धारा; जैसी-कविताओं में परिलक्षित होती है। 'बादल राग' का बादल उनकी क्रान्तदर्शिता की प्रतीकात्मक पहचान बनकर उभरा है, तो कुकुरमुत्ता सर्वहारा का। लेखक के शब्दों में - ''निराला की क्रांतिकारी भावधारा का उत्स गहन मानवीय करुणा है, जिस कारण दलित-शोषित सहज ही उनके स्नेहभाजन बन जाते हैं। (पृ. 34-35)

निराला का क्रांतदर्शी रूप उनके परवर्ती काव्य-कर्म में भी लक्षित है, चाहे वह गीतिका हो या अर्चना या आराधना। इतना ही नहीं, उनका गद्य-कर्म भी इसका साक्षी बना है। कुल्लीभाट बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़, काले करनामे - जैसे उपन्यासों में भी उनका क्रान्तदर्शी रूप सिर चढ़कर बोलता है। वे न केवल वैचारिक दृष्टि से, अपितु भाषिक शैलीय दृष्टि से भी क्रांतिकारी रहे बकौल लेखक - निराला व्यक्तित्व और कर्त्तव्य-दोनों दृष्टियों से आजीवन क्रांतदर्शी बने रहे। उनकी पीठ पर आनेवाले शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन क्रान्तदर्शी बनते-बनते रह गए। विद्यानिवास मिश्र ने इसलिए, उन्हें 'बोर्डर केस' का कवि माना है।

'छन्दोमुक्ता और निराला का कवि-कर्म' शीर्षक निबन्ध में डॉ. पंजियार ने काव्य में छन्दोमुक्ता की परम्परा और औचित्य पर विचार करते हुए निराला की चुनी हुई छन्दोमुक्त कविताओं पर प्रकाश डाला है। लेखक की तजबीज सही है कि प्रयोगवाद और नयी कविता के युग में निराला के मुक्त छन्द का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है, खासकर, नये कवियों पर। लेखक न डॉ. रामविलास शर्मा के हवाले ठीक ही कहा है कि, ''वे मुक्त छन्द द्वारा हिन्दी कविता की लय को बोलचाल की भाषा, वाद्य की भाषा के नजदीक ला रहे थे।'' (पृ.40)

इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि परवर्ती हिन्दी कविता लगभग गद्यात्मक हो गयी। खुद, निराला की कविता जबान से फिसलने लगी। इसके बावजूद उनकी रचनाओं में कविताई बनी रही।

सुमित्रानन्दन पन्त छायावादी वृहत्त्रयी की तीसरी कड़ी है। कुछ आलोचकों की दृष्टि में तो छायावाद के प्रथम कवि वही हैं। 1922 में प्रकाशित उनकी 'उच्छ्वास' कविता को छायावाद की प्रथम अभिव्यक्ति माना गया, तो 1926 में प्रकाशित 'पल्लव' की भूमिका को छायावादी उन्मेष का डिंडिमनाद। छायावाद, अपने पूरे वैभव के साथ उनके 'पल्लव' और 'गुंजन' में उपस्थित है। डॉ. पंजियार ने इन्हीं सारी बातों की चर्चा अपने निबन्ध 'सुमित्रानन्दन पन्त और छायावाद' में की है।

'महीयसी महादेवी : एक अनबुझ प्यास' नामक सातवें निबंध में लेखक ने अलौकिक अज्ञात प्रियतम के प्रति महादेवी के प्रणय-निवेदन, मिलनोत्कंठा तथा विरह-वेदना को दीपक, बादल आदि प्रतीकों के आसंग में विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

ब्रजभाषा में बुंदेलखंडी शब्दों की बघार से काव्य-भाषा का कलेवर बनाकर सारस्वत यात्रा प्रारंभ करने वाले मैथिलीशरण गुप्त, बाद चलकर खड़ी बोली कविता के आलोक-स्तंभ बने। डॉ. राजन्द्र पंजियार ने अपनी इसी धारणा की बुनियाद पर 'आधुनिक खड़ी बोली के आलोक-स्तंभ गुप्त जी' शीर्षक निबंध लिखा। जनवरी, 1905 की 'सरस्वती' में छपी उनकी 'हेमन्त' कविता खड़ी बोली हिन्दी की पहली कविता मानी जाती है, जबकि 1906 में प्रकाशित 'रंग में भंग' पहला खंडकाव्य। फिर तो 1910 में जयद्रथ वध, 1912 में भारत-भारती, 1931 में साकेत जेसे खड़ी बोली-काव्यों के प्रकाशन ने उन्हें खड़ी बोली कविता का वास्तविक आलोक-स्तंभ सिद्ध किया। गुप्त जी ने लोगों की इस धारणा को बखूबी ध्वस्त किया कि कविता ब्रजभाषा में ही लिखी जा सकती है, खड़ी बोली में नहीं।

'राष्ट्रीयता और मखानलल चतुर्वेदी' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने राष्ट्रीय संदर्भ में मखनलाल चतुर्वेदी के साहित्यिक कर्म का मूल्यांकन किया है। कविताओं में उन्होंने 'चेतावनी', 'पुष्प की अभिलाषा', 'कैदी और कोकिला' का संदर्भोल्लेख किया है, तो गद्य-कर्म के अन्तर्गत 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक के अलावा निबन्ध, कहानी, संस्मरण इत्यादि का। जहाँ तक उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता का संबंध है, इसके दो रूप देखने को मिलते हैं - पहला, राष्ट्रीयता का सांस्कृतिक मोड़ और दूसरा, राष्ट्रीयता का उद्दाम अर्थात् बलिदानी रूप। राष्ट्रीयता का दूसरा रूप कहीं अधिक भास्वर है। कवि ने किसी भी राष्ट्र के जीवंत अस्तित्व के लिए नैतिक मूल्यों की उपस्थिति अनिवार्य बतायी है। उन्हीं के शब्दों में - ''वह राष्ट्र-राष्ट्र नहीं है, जिसकी रीढ़ की हड्डी नैतिकता से न बनी हो। जहाँ ऊँचा सिर नहीं हो सकता, वहाँ कोई सिर उतारकर क्यों रख देगा?'' (पृ. 66)

'अमर गीतकार गोपाल सिंह नेपाली' नामक निबन्ध 2009 में 'नेपाली की प्रतिनिधि कविताएँ सं. सतीश कुमार राय (राजकमल प्रकाशन) तथा 2010 में 'नेपाली समग्र' (सविता नेपाली द्वारा संपादित) छपने के काफी पहले लिखा गया प्रतीत होता है, अन्यथा लेखक यह कदापि नहीं लिखते - ''खेदजनक बात यह है कि उनकी रचनाएँ आज बहुत ढूँढने पर भी मुश्किल से मिलती हैं।'' जो हो, इस निबन्ध में लेखक ने नेपाली के गीतकार-पक्ष पर सकारात्मक दृष्टि से विचार किया है। उनके अनुसार, नेपाली के गीतकार का विकास दो चरणों में हुआ है। पहले चरण के अन्तर्गत उनके 'पंछी' से 'नीलिमा' तक पाँच कविता/गीत-संग्रह आते हैं, जबकि दूसरे चरण के अन्तर्गत 'नवीन', 'हिमालय ने पुकारा' तथा असंकलित कविताएँ परिगणित हैं।

आलोच्य निबन्ध में 'उमंग' को नेपाली का प्रथम, जबकि 'पंछी' को दूसरा काव्य-संग्रह दिखाया गया है, जबकि सविता नेपाली ने 'पंछी' को पहला और 'उमंग' को दूसरा संग्रह दिखाया है। सतीश कुमार राय ने नेपाल सिंह नेपाली की प्रतिनिधि कविताएँ में डॉ. पंजियार की तरह ही 'उमंग' को प्रथम काव्य-संग्रह माना है। जो हो, एक गीतकार होने के लिए जो शर्तें नेपाली ने अपने इन गीतों में पूरी की हैं।

'मेघगीत के अमृत उद्गाता : जानकी वल्लभ शास्त्री' शीर्षक ग्यारहवें निबंध में लेखक ने उत्तर छायावादी कवि-गीतिकार जानकी वल्लभ शास्त्री के गीतिकाव्य 'मेघगीत' में संकलित मेघ-विषयक सभी इक्यावन गीतों पर संक्षेप में विचार किया है। निबंधकार की दृष्टि में, मेघगीतकार शास्त्री जी ने अपने गीति-शिल्प का निर्माण पौरस्त्य एवं पाश्चात्य दोनों प्रकार के तात्त्विक मिश्रण से किया है। ये गीत एक ओर ऋग्वैदिक ऋचाओं, वाल्मीकि व वेदव्यास के छन्दोबद्ध अनुगायन के रूप में रचे गये हैं, तो जयदेव और विद्यापति की पद-लालित्यमयी शैली में। संग्रह का पहला गीत बावरी मीरा को समर्पित है, जिसकी स्मृति उसके प्रियतम श्याम की मनहर छवि को बरबस उकेर जाती है। ध्वनि-सौन्दर्य की दृष्टि से एक गीत की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

''मेघरन्ध्र में मन्द्र-सान्द्र ध्वनि/द्रिम-द्रिम-द्रिम उन्मद मृदंग की,
भाद्र-समुद्र-रूद्र-रव रशना/नाच रही कस-दसदिशि-वसना।''

कहीं श्लेष तो कहीं उपमा, कहीं बिम्बात्मकता तो कहीं प्रतीकात्मकता, कहीं अन्योक्तिपरक अभिव्यंजना तो कहीं समासपरक व्यंजना की बहुवेशिनी छटा मेघगीत को महत्त्वपूर्ण बना जाती है। लेखक की स्थापना सही है कि ''मेघगीत'' के गीत महादेवी के गीत-संग्रह की एकरसता से भिन्न अपने इन्द्रधनुषी प्रभाव की विविधता के कारण रसोद्रेक में अतुल सामर्थ्य प्रकट करते हैं।'' उनमें कहीं आषाढ़ की आर्द्रता है, कहीं श्रावण की रिमझिम वर्षा का मोहक संगीत और कहीं भाद्रपद की

धारासार वर्षा के साथ विद्युत की चमक और कड़क के साथ मन-प्राणों को भय-प्रकंपित कर देने वाला एक उदग्र पौरूष का पराक्रम, किन्तु अनुभूति की तरलता और मार्मिकता का हीं अभाव नहीं।'' (पृ.85)

अच्छा होता कि लेखक 'मेघगीत' के सारे गीतों का मर्मोद्‌घाटन कर पाते !

'राष्ट्रभाषा हिन्दी के अग्रणी ध्वजवाहक : सुधांशु जी' शीर्षक निबंध में लेखक ने हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक व बिहार विधनसभा के अध्यक्ष डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु के उत्कट हिन्दी-प्रेम तथा उनके द्वारा की गयी एतद्विषयक सेवाओं को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है।

हिन्दी को वास्तविक अर्थ में राजभाषा के पद पर आसनस्थ करने के लिए सुधांशु जी ने न केवल विधानसभा का सारा काम-काज हिन्दी के माध्यम करने-कराने के लिए बाध्य किया, बल्कि तत्कालीन मुख्यमंत्री कृष्णवल्लभ सहाय, राज्यपाल तथा भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति और प्रसिद्ध कवि-लेखक दिनकर को अंग्रेजी में भाषण करने, निमंत्रण भेजने एवं हस्ताक्षर करने पर फटकार लगायी। हिन्दी के हित में वे विधान-सभाध्यक्ष की कुर्सी का भी त्याग करने के लिए सदैव तैयार थे। अंग्रेजी को वे गुलामी का प्रतीक मानते थे। उन्होंने केन्द्र सरकार को राजभाषा हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए एकाधिक बार अनुरोध पत्र भेजा।

लेखक ने अपने इस निबंध को प्रामाणिक एवं ज्ञानवर्धक बनाने के लिए सिद्धेश्वर प्रसाद, कुमार विमल, सत्येन्द्र अग्रवाल प्रभृति के संस्मरणों, लेखों, डायरियों का अपेक्षित उपयोग किया है।

अगला निबंध 'आचार्य' शिवपूज्य सहायक और राष्ट्रभाषा हिन्दी' लेखक के भाषा-विमर्श का बढ़ाव है। पिछले निबंध में सुधांशु जी के हिन्दी-प्रेम व सेवाओं को दिखाया गया था, तो इसमें शिवपूजन सहाय के हिन्दी-प्रेम तथा सेवाओं को। 'अजातशत्रु' 'हिन्दी का देवता' 'साहित्य-जगत का दधीचि', 'बिहार का महावीर प्रसाद द्विवेदी' जैसे विशेषणों से मंडित व्यक्तित्व के स्वामी शिवपूजन जी ने निस्पृह भावेन हिन्दी की बहुविध सेवा की; तथा - हिन्दी भाषा का परिमार्जन, संपादन, बड़े-बड़े साहित्यकारों की रचनाओं का भाषिक परिशोधन, प्रूफ-संशोधन इत्यादि। महात्मा गांधी, पं. नेहरू प्रभृति के उलट उन्होंने हिन्दुस्तानी का विरोध और राष्ट्रभाषा के रूप में परिनिष्ठित हिन्दी का समर्थन किया। 1941 में बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर अध्यक्षीय भाषण करते हुए अपनी इस धारणा को जोरदार ढंग से व्यक्त किया था - ''भारत की राष्ट्रभाषा होने का जन्म-सिद्ध अधिकार एकमात्र हिन्दी को ही प्राप्त है। यह प्रकृति-प्रदत्त, ईश्वर-दत्त अधिकार है। इसे जो छीनना चाहेगा, मुँह की खाएगा।'' (पृ. 104) शिवजी सही अर्थ में राष्ट्रभाषा हिन्दी के संघर्षी ध्वजवाहक थे। उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी को समृद्ध व बलवत्तर बनाने के लिए लोकसाहित्य के उद्धार की वकालत की।

'कथा-सम्राट प्रेमचंद और उकनी कृषक-चेतना' में लेखक ने प्रेमचंद के चुने हुए उपन्यासों एवं कहानियों; यथा - प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गोदान (उपन्यास), पूस की रात और कफन (कहानी) के सहारे 'प्रेमचंद की कृषक-चेतना' पर प्रकाश डाला है। कथा-सम्राट ने उत्तर भरत के किसानों की दुरवस्था पर एकतरह से श्वेत पत्र जारी किया है। उनमें से अधिकांश किसान छोटी जोत वाले हैं। किसान और खेतिहर मजदूर के बीच की स्थिति वाले गोदान का नायक होरी अंत में किसान से मजदूर हो अकाल मौत मरता है। किसानों की इस दुर्दशा के लिए जमीन्दारों, सामंतों और पटवारियों का स्वार्थ-प्रेरित गठजोड़ है।

'राष्ट्रीयता का सन्दर्भ और जयशंकर प्रसाद' शीर्षक निबन्ध में डॉ. पंजियार ने प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक 'चन्द्रगुप्त' में विन्यस्त राष्ट्रीयता के सन्दर्भ को उन्मीलित किया है। उनके अन्य नाटकों; जैसे - स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि के अतिरिक्त, उनके कविता-संग्रहों - 'लहर', 'महाराणा का महत्व' तथा कुछ कहानियें में भी राष्ट्रीयता के स्वर मुखर हैं। अध्ययन का आधार इन सबको बनाया जाता, तो शीर्षक के साथ न्याय हो पाता। बहरहाल, लेखक ने 'चंद्रगुप्त' में आगत राष्ट्रीयता के मूल में तीन कारकीय तत्त्वों की पहचान की है - (1) भारत के गौरवमय अतीत का बखान, (2) चाणक्य, चंद्रगुप्त, सिंहरण, अलका - जैसे राष्ट्रभक्त देशी पात्रों की योजना, (3) कार्नेलिया

जैसे विदेशी पात्रों के मुख से भारत का गौरव-गान कराया जाना।

असल में, राष्ट्रीयता के मुख्यतः दो संदर्भ होते हैं - राष्ट्र की सांस्कृतिक गाथा तथा राष्ट्र की वेदी पर प्राणोत्सर्ग की उत्कट इच्छा। ये दोनों ही सन्दर्भ चन्द्रगुप्त नाटक में आए हैं। 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक संदर्भ का उदाहरण है, तो 'हिमाद्रि तुंग श्रृंण से' उद्दाम राष्ट्रीयता का।

'रामवृक्ष बेनीपुरी की उपन्यास-कला', बेनीपुरी के दो उपलब्ध उपन्यासों - 'पतितों के देश में' (1930-32) तथा 'कैदी की पत्नी' (1940) पर आधारित विश्लेषणात्मक अध्ययन है। लेखक की दृष्टि में पहला उपन्यास भाषिक दृष्टि से भले ही महत्त्वपूर्ण बन पड़ा हो, लेकिन घटनाओं में तारतम्य के अभाव की वजह से थोड़ा कमजोर पड़ गया है। कथावस्तु की दृष्टि से यह उपन्यास सामाजिक नैतिकता की स्थापित परंपरा के विरूद्ध अनावश्यक छेड़छाड़ के लिहाज से आक्रामक माना गया। एक विवाहित युवक का गाँव की कुँवारी कन्या से प्यार करना सामाजिक दृष्टि से अस्वीकार्य रहा है। दूसरा उपन्यास स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के फलस्वरूप जेल में बंदी जीवन व्यतीत करने वाले एक व्यक्ति की पत्नी दुलारी की करूण कहानी पर आश्रित है। स्वतंत्रता सैनिक को तो मान-सम्मान मिलता है, पर उसकी पत्नी को? पूर्वदीप्ति-शैली में लिखि यह उपन्यास आद्यन्त पाठकों को बाँधे रखने की क्षमता के कारण महत्वपूर्ण बन पड़ा है। लेखक ने बेनीपुरी-लिखित, मगर अप्राप्य उपन्यासों-दीदी, सात दिन और जीवनतरू' की भी सूचना दी है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द के बाद दूसरे बड़े कथाकार जैनेन्द्र हुए। प्रेमचंद्र की तरह ही उन्होंने कहानी, उपन्यास, निबंध और अनुवाद-कार्य किये। उनके द्वारा लिखित पुस्तकों की संख्या चालीस है। प्रेमचंद से उनकी भिन्नता इस अर्थ में है कि उन्होंने मुख्यतः शहरी मध्यवर्गीय परिवार और चरित्रों को लेकर कथा-लेखन किया है, जहाँ उन्होंने बीच-बीच में मनोविज्ञान का अवलंबन लिया है। डॉ. पंजियार ने अपने अठारहवें निबंध 'जैनेन्द्र और उनका रचना-संसार' में, संक्षेप में ही सही, जैनेन्द्र के समग्र साहित्य-कर्म; जैसे - परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त्त, व्यतीत, जयवर्द्धन, अनाम स्वामी (उपन्यास), फाँसी, वातायन, नीलम देश की राजकन्या, एक रात, दो चिड़िया, पाजेब, ध्रुवयात्रा, जयसन्धि (कहानी-संग्रह), जैनेन्द्र के विचार, प्रस्तुत प्रश्न, जड़ की बात, साहित्य का श्रेय और प्रेय, काम प्रेम और परिवार, मन्थन ये और वे समय और हम इत्यादि (निबंध-संग्रह), मन्दाकिनी, प्रेम में भगवान, पाप और प्रकाश (अनुवाद-कर्म) इत्यादि का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। जैनेन्द्र का साहित्य पाठकों को एक ओर विचार और संवेदना की तलहटी में ले जाता है, तो दूसरी ओर वैविध्यमय विस्तार के आकाश में विचरण भी कराता है। हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर जैनेन्द्र का निबंध-साहित्य उन्हें गंभीर विचारक सिद्ध करता है।

रामकुमार वर्मा हिन्दी के उत्तरछायावादी कवि, अनुल्लंघ्य स्थान के एकांकीकार एवं मौलिक चिन्तना वाले इतिहासकार के अलावा अन्वेषकीय दृष्टि-संपन्न आलोचक थे। डॉ. राजेन्द्र पंजियार ने अपने उन्नीसवें निबन्ध 'डॉ. रामकुमार वर्मा की समीक्षा दृष्टि' में रामकुमार के समीक्षकीय प्रदेय व दृष्टि पर विशद प्रकाश डाला है। समीक्षक के रूप में उन्होंने साहित्य समालोचना, कबीर का रहस्यवाद, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, साहित्य-चिन्तन, साहित्य शास्त्र जैसे आलोचना-ग्रंथ दिये जहाँ उनकी समीक्षकीय दृष्टि मौलिक व निर्भान्त रूप में दिखाई पड़ती है। समीक्षक के रूप में उन्होंने समीक्षा की कई सरणियाँ अपनायी; जैसे - सैद्धांतिक, व्यावहारिक, तुलनात्मक, ऐतिहासिक इत्यादि। कुल मिलाकर, उन्होंने पौरस्त्य एवं पाश्चात्य समीक्षादर्श अपनाते हुए समीक्षा-कर्म किया है। परिनिष्ठत व प्रौढ़ भाषा के साथ-साथ अभिव्यक्ति की पारदर्शिता के कारण उनका समीक्षा-कर्म विशिष्ट है।

'साहित्य के परिदृश्य में अनुवाद' अनुवाद की बुनियादी समझदारी पर आधारित सैद्धांतिक निबंध है। उदाहरणार्थ इसमें अनुवाद की परिभाषा व प्रकार पर विचार किया गया है। कहना पड़ेगा कि साहित्यिक दृष्टि से उसकी सर्जकीय भूमिका गौण है। संभव है, डॉ. पंजियार ने पुस्तक को छात्रोपयोगी बनाने के उद्देश्य से इस निबन्ध को स्थान दिया हो।

छायावाद की कतिपय विशेषताओं में छायावादी कवियों की नारी भावना, विशेष महत्व रखती है। प्रसाद ने उसे 'श्रद्धा' और 'जीवन का पीयूष-स्रोत' कहकर अभिवंदित किया है तो, पंत ने

'नारी-उर के भीतर स्वर्ग का निवास' बताया। दूसरी तरफ निराला और महदेवी ने उसके उपेक्षित, दुखमय जीवन के चित्र खींचे हैं। छायवादी काव्यों में नारी शीर्षक अंतिम निबंध का प्रतिपाद्य लगभग यही है। एक बात और छायावादियों ने नारी के प्रेयसी-रूप को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया है, जबकि उसके माता, बहन, पुत्री रूप भी हैं।

आलोच्य पुस्तक में संकलित कुल इक्कीस निबंधों में से अधिकांश तेरह निबंध भक्तिकाल से लेकर उत्तर छायावाद युगीन कवियों पर आधारित हैं। शेष गद्यकारों पर। इससे पता चलता है कि लेखक का मन अपेक्षाकृत काव्य में अधिक रमता है। जो हो, लगभग सारे निबंध युगबोध के विविध स्वरों से निनादित हैं। इस आधार पर पुस्तक का शीर्षक 'हिन्दी-साहित्य में युगबोध के स्वर' होता, तो निबंधों के साथ कहीं अधिक न्याय हो पाता। जो हो, यह पुस्तक छात्रों, शोधार्थियों, शिक्षकों तथा सामान्य पाठकों के लिए भी उपादेय बन पड़ी है। आशा है, पाठक इसका स्वागत करेंगे।

समीक्षित पुस्तक : युगबोध और हिन्दी साहित्य

❋❋❋

संभाव्य संदेश

उत्तम कार्य-संस्कृति

उत्तम कार्य-संस्कृति व्यक्ति के अंतरतम में सकारात्मक पक्ष को स्थिर करती है, स्वाभिमान को उत्पन्न करती है तथा प्रत्येक समस्या को आवश्यकता में परिवर्तित करने की क्षमता रखती है। जीवन का अंतिम लक्ष्य 'संतुष्टि' का प्रथम सोपान यहाँ से ही प्रकृष्ट रूप से आरम्भ होता है।

प्रभु अर्ज

रवि कुमार गोंड़
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश,
मो0 09318133037

मैं कब कहता हूँ
तुम मुझे पूजो,
मैं बस यह चाहता हूँ
तुम मुझे महसूस करो।
मैं कब कहता हूँ
तुम धर्म ग्रंथों का वरण करो
मैं बस यह कहता हूँ
तुम धर्म ग्रंथों से अच्छी बातों को आत्मसात करो।
मैं कब कहता हूँ
तुम अपनों का खून बहाओ
मैं बस यह कहता हूँ
तुम एक-दूसरे से मिलकर रहो।
मैं कब कहता हूँ
ईश्वर अलग-अलग है
मैं बस यह कहता हूँ
हर इंसानों में मैं ही हूँ।
मैं कब कहता हूँ
तुम अधर्मी बनो
मैं बस यह कहता हूँ
तुम धर्मी नेक बनो।
मैं कब कहता हूँ
तुम जाति-पाति में बंधे रहो
मैं बस यह कहता हूँ
तुम प्यार के बंधन में बंधे रहो।
मैं कब कहता हूँ, मैं नहीं हूँ
मैं बस यह कहता हूँ
मैं हूँ भी और नहीं भी।
मैं कब कहता हूँ
मैं नजर नहीं आता
में बस यह कहता हूँ
तुम मुझे देखकर तो देखो।
मैं कब कहता हूँ
तुम अपने गुरूओं, बड़ों, माता-पिता का अपमान करो
मैं बस यह कहता हूँ
तुम उनका आशीर्वाद लेकर
अपने जीवन को मोक्ष के अनुरूप बनाओ।

❋❋❋

कहानी

समिधा

शतदल मंजरी
गुड़गाँव, हरियाणा
मो0 8292090400

कंपकपाते, सिहरते कदमों से चलता 'मलय' नियति की क्रूरतम सच्चाई से सामना करने जा रहा था, पहली बार चाल में ढीलापन, वसनों की अस्त व्यस्तता और मन... मन तो जैसे एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं हो पा रहा था। यक्ष को युधिष्ठर का दिया गया उत्तर आज सत्य लग रहा था। ''मन की गति'' सचमुच संसार में सर्वाधिक तीव्र है - क्षण में धरा, क्षण में गगन, क्षण में क्षुब्ध, क्षण में मगन, उफ...आते-आते मन न जाने कितनी बार अतीत के गहवर में अटका, कितनी बार उबरा, वह स्वयं नहीं जानता....।

आश्रम का सम्पूर्ण वातावरण किसी दिव्यात्मा के पुण्य-प्रताप से आलोकित हो रहा था। किसी सुकर्मों की सुगंध सकल वन्य प्रदेश को सुरभित कर रही थी। जलती समिधा, यज्ञ आहुतियाँ सर्वत्र पवित्रता का सृजन कर रही थी। द्वार तक आते-आते कंठ भी अवरूद्ध हो चला था। पर ये पानी की प्यास नहीं थी। अंतस तर और चक्षु तर, फिर भी कंठ सुख चला था। द्वार के भीतर आते ही दोनों तरफ अशोक के वृक्ष और उनके बीच को मिटाते मालती के फूलों से लदे लट 'मलय' को आज अधिक शांत लग रहे थे। वाटिका द्वार और आश्रम के बीच सुहावना सेतु थी। प्रकृति और जीव के मध्य.... आज सब-कुछ निस्तब्ध और शांत लग रहा था। बरामदे पर बिछी कालीन पर सभी भक्तगण अश्रुपूरित नेत्रों से रामधुन कर रहे थे। बरामदा - जहाँ आने में एक सर्दी तक चलने का श्रम किया हो, हृदय धक्-धक् के स्पंदन को भूल चुका था। पैर नीचे से हल्का-हल्का कांप रहा था, आँखें अपनी धीरज की गठरी खोल चुकी थीं, अश्रुधारा हृदयहार बन रहे थे।

कितनी मधुर...कितनी सुखद निद्रा में लीन है, उस श्रीमुख की शोभा तो यूँ वह कई बार निहार चुका है, लेकिन जब सौंदर्य में शांति हो, पूर्णत्व को प्राप्त कर लेने का सुख हो तब द्विगुणित या अद्वितीय कैसे न हो।

श्वेतवर्णी आभा चंद्रवती तान्या के ललाट पर चंदन रेखा, आपादमस्तक, बिखरे-असंख्य-सुगंधित सुमनों से अपुरित देह....जो अब निरंतर कष्ट-साध्य जीवन से विराम ले चुकी थी, श्वेतवर्णी वस्त्रों में लिपटी साक्षात देवी प्रतिमूर्त्ति लग रही थी। इसी असीम सौंदर्य का तो मूक पूजारी था वह। कितना कुछ छिपा रखा था अपने मन के उस चौथे कौने में - जहाँ किसी की पैनी दृष्टि के खंजर भी न लग सके।

श्रीमद्भागवत् गीता के श्लोक वातावरण में छायी निस्तब्धता के भय को दूर कर रहे थे। मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता और निष्काम कर्म के प्रेरणादायी श्लोक आज मन के किसी अवसाद को किसी प्रकार कम नहीं कर पा रहे थे। अगरबत्तियों की महकती धूम-रेखाएँ एक कोने से वर्तुलाकार उठती हुई अंतरिक्ष में खो रही थी - जैसे प्राण शरीर से निकलकर प्रकृति में लुप्त हो जाते हैं।

एक कोने में बैठा मलय अब भी सोच रहा है - समिधा के बारे में। यही नाम है उसका - जिसके जीवन के विश्राम को कुछ दरिन्दों ने सदा के लिए विकल कर दिया...चित्र अपने स्वरूप को पाने लगा, अतीत के पन्ने स्मृति - वायु के झोकों से पलटने लगे। सारी घटनाएँ चित्रवत् हो दृष्टिपथ पर चलायमान हो गयीं।

आज समिधा का विवाह है। वह भी सम्मिलित है एक आगत की भांति। समिधा के मंगल-जीवन की हृदय में शुभ-कामना लिए-मात्र एक आमंत्रि अतिथि। भोजन के उपरांत व्यवहार की औपचारिकता पूर्ण कर आम अतिथियों की तरह वह भी अपने आप में, अपनी निराश जिंदगी की तरह सामान्य हो गया था। समिधा तो एक कल्पना हो सकती थी - किसी श्रेष्ठ जीवन के

लिए। उसका व्यक्तित्व सबके लिए प्रेरणादायी है। भगवान ने तो मानो - अपने समस्त श्री गुण संपद् का घड़ा ही उस पर उड़ेल कर रख दिया था - ईर्ष्या - प्रतिस्पर्द्धा और डाह का कारण तो अनेक बार बन चुकी है। बचपन, युवावस्था तो सुख - चैन से पूरित रहे, पर शायद - विवाह का सुख वह अपने प्रारब्ध में नहीं लिखवा पायी। जो गुण कभी उसके रूप और व्यक्तित्व में चार-चाँद लगाते थे - विवाह के अवसर पर ही वे अवगुण हो गये। असीमित सौंदर्य और गुणात्मक व्यक्तित्व के अहं पर चोट करने लगा। संदेह के विषधर - जीवन वाटिका में विष वमन करने लगे। सुंदर गौरवर्णी काया कब पीत हो चली, मालूम न हो सका। आजानुलंबित केश जो अपने कुंतलों में सैकड़ों युवा मनों को उलझा चुके थे, वह श्रीहीन हो चले थे। उमंग-तरंग हृदयांचल में ज्वार-भाटे की तरह उछल-पुछल कर भीतर-ही-भीतर पछारे खा रही थी। सब कुछ घुटा-घुटा सा लग रहा था। पर किसी को कुछ कह न सकी थी वह। प्रेम की खोज और प्रेम पाना ही लक्ष्य बना लिया था उसने। इसके बावजूद भी और कुछ किया था उसने जैसा कि किसी किताबों में पढ़ रखा था -

पति को भोजन कराते समय 'माँ' और शैय्या पर वेश्या की तरह आचरण करना ही स्त्री जाति का धर्म है। उस धर्म में भी कभी नहीं चुकी थी, पर बदले में सदैव छली गयी। अपमान के कड़वे घूँट उसका गला तर करते रहे और एक अर्से से मन में मात्र एक आशा लिए कर्म-धर्म की परीक्षा देती रही।

धैर्य उसका स्वभाव न था पर अनायास उसके स्वभाव का एक अंग बन गया था क्रोध तो मानो उसके स्वभाव नगरी से ऐसे निकल गया था जैसे उसे देश निकाला दिया गया हो.... पर जो भविष्य में न लिखा हो वह प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल सकता। खीझ आती है, यह सोचकर अपने आप पर...और उस निराशा का क्षण पंक्तिबद्ध हो जाता है। वह प्रतिभा, सौंदर्य और कर्म भी साथ नहीं दे पाये इस भाग्य के आगे और नियति के क्रूर हाथों से असमय ही अपना तृवित दाम्पत्य समाप्त कर बैठी। जितना मान-सम्मान जीवन के एक पक्ष में देखा, दूसरे पक्ष में पदार्पण करते ही वे सब छिटककर दूर जा पड़े।

कितनी गीली सच्चाई थी, यही तो उसका तथ्य था। यही संवाद... जीवन की क्षणभंगुरता और मोह के बंधन उसे भी विचलित कर गये। बस, अब और नहीं, अपने आप से बाहर आयी वह... अब बाहर की लड़ाई नहीं लड़ेगी। अब भीतर को बाहर लाना होगा। जानना है कि ऐसा आखिर क्यों होता है, क्या चाहता है मन, क्यों भटकता है, क्यों मोहपाश कसते हैं, क्यों कोई दर्द उत्पन्न होता है, जो चाहा वो मिलता क्यों नहीं, क्यों-क्यों-क्यों...! यक्ष के प्रश्न की तरह मथते गए उसे और 'कृष्ण' उबारने आये 'मलय' के रूप में -

''मलय, जानते हो समिधा किसे कहते हैं ?'' चौंका था वह इस यकायक किए गए प्रश्न पर - ''हाँ जानता हूँ, यज्ञ में प्रयुक्त की जानेवाली लकड़ी''। ''बस और नहीं जानते...? ''अच्छा ये बताओ, चिता की लकड़ी और समिधा की लकड़ी में क्या अंतर है ?'' ''क्यों पूछ रही हो'' खीझ पड़ा था मलय।

पर वह इस खीझ से परे दूर की कहीं सोच रही थी। बोली. ''देखो...चिता की लकड़ी जरा-सी चिंगारी में धू-धू करके जल उठती है... और समिधा ?... समिधा तो आहुतियों के साथ धीमी-धीमी जलती है। सुलगती है, धुएँ के बीच गंध लिए इष्ट तक पहुँचाने की कोशिश करती है।''

मलय यकायक चौंका।

उसकी ये अनोखी दर्शन-व्याख्या दूर तक हिला गयी थी मलय को। कई बार कहा उसने...तुम दर्शन और दुख को कम करने का साधन बनाओ समिधा, अपने जीवन का अंग नहीं, पर वह कहाँ विचार रही थी यह सब।

उसका पथ तो तय हो गया था, लक्ष्य भी तय, बस चलना ही शेष था। जीवन की असमझ पहेलियों को हल करने का प्रयत्न साधती रही। सौंदर्य तपस्या की शान पर चढ़कर और निखरता गया। तपस्या उसके दृढ़त्व को बढ़ाती रही। सौंदर्य के साथ सत्य का मिलन सोने पे सुहागा हो गया। और 'मलय' - वह प्रेरणा बनकर स्वयं मतिभूत बनने को उद्यत हो गया।

जीवन से उबरने आया था, आंकठ डूब गया। कितनी बार मौन संप्रेषण किया। भावनाओं का तेजोमय लावण्य मूक हो चुका

था। वाचालता जाने कहाँ लुप्त हो गयी थी। ऐसे में समिधा सब कुछ जानते हुए अनजान बनी अपने पथ पर चलती रही और समय भी चलता रहा अवाध गति से...।

मलय ने सुना - एक आश्रम बनाया है समिधा ने। स्वाध्याय की उत्कंठा उसे बहुत कुछ बना गई। वह बाँटने लगी जिसे उसने भीतर खोजकर पाया था। कई तृषित हृदय उसकी वाणी की प्रखरता से, उसके उत्तरों से अपनी प्रश्न-लालसा शांत करने लगे। उसके तर्क और ईश्वरप्रणीत बुद्धि जनमानस के दुखों की अतिरंजना को कम करने लगे।

यश और वाणी की प्रखरता दूर-दूर तक फैल गयी। मलय स्वयं आया था - एक याचना लेकर... एक प्रार्थना लेकर ... प्रेम की परिभाषा स्वयं समझाने... स्वयं बताने, पर कहाँ ...? वह तो सुनकर भी नहीं सुन रही थी...। बस आँखों से मलय की क्षुधित-तृषित चित्त की आया कर रही थी और वाटिका में चेहरे पर हल्की मुस्कान लिए समिधा तृप्ति दे रही थी।

''मेरा साथ न दोगी ?'' आश्रम की वाटिका में घुमते हुए मलय ने पूछा था, बहुत साहस करके। ''साथ..., कैसा साथ..?'' मैं तो कब से तुम्हारे साथ हूँ। समिधा और मलय तो सदा से साथ हैं।

''कहाँ...?'' तुम तो आश्रम में यहाँ ज्ञान बाँटती हो, लेकिन तुम्हारे प्रेम का भिक्षु तो कब से तुम्हारी प्रतीक्षा में नेह - रत्न बिछाये बैठा है। सबका समाधान है, निदान है, लेकिन मेरे प्रश्न पर यह मौन दृष्टि क्यों...? स्नेहरहित भी कोई दर्शन है, प्रेमहीन भी कोई ज्ञान है...।

हँस कर बोली... मुझे बस यही मालूम है। सब कुछ भोगों इस जगत में, लेकिन व्यक्त भाव से यही तो साधना है, यही तपस्या है, बस मुझे यही करने दो, इसमें विध्न न डालो।

बस एक बार धृष्ट हो गया था मलय अपने प्रणय-निवेदन में। पुरूष इतनी जल्दी हार नहीं मानता ....रूपसी का रूप... तेजस्विनी का तेज भी नहीं रोक सका, और सायंकाल के धुंधलके को आश्रय बनाकर वह कर बैठा धृष्टता। कस लिया आलिंगन पाश में, उन मनस्विनी देयष्टि को। कामेत्तेजना में चूमता ही चला गया वह उसे। एक क्षण तो हतप्रभ रह गयी थी समिधा। अचंभित रह गयी थी उसकी इस ठिठाई पर, क्षण भर तो उसका सर्वांग कांप गया। जिस प्रेम के लिए जीवन भर तरसती रही और जिसकी खोज में भटकते-भटकते वह तपस्या की राह पर आ गयी थी, आज वही सब एक पल में मिल गया। क्या यही प्राप्य उसका साध्य था...! देह से परे क्या वास्तव में प्रेम नहीं प्राप्त हो सकता...! प्रेम क्या... वह देह की परिधि से पार नहीं हो सकता...! ऐसे कितने ही प्रश्न क्षण-भर में मन की देहरी लाँध कर पार कर चुकी थी। सब चेतना शून्य-सा हो गया था। पर तभी - एक स्वर उभर निस्सिम गगन में आश्रम के किसी कोने से साध्वियां गा रही थीं।

उसके आलिंगन-पाश से संज्ञाशून्य-सी चेतनालब्ध हुई समिधा दूर झटककर श्वास साधने लगी। तेजी से ऊपर - नीचे होता श्वास उसे अपने पर क्रोध करने के लिए बाध्य कर दिया। क्रोध की अधिकता रोक न सकी और वह रो पड़ी। ''क्यों मेरी तपस्या भंग की तुमने...? क्यों...? क्या यही प्रेम है...? ये वासना है मलय...वासना। इस दल-दल से निकलो। अन्यथा...अन्यथा.. मेरा कुछ नहीं देख पाओगे।'' जब इस प्रेम के लायक थी तो कोई मेरे ऊपर नजर डालने से भी इनकार करता था। आज जब मेरा यौवन ढह गया, मेरा यह रूप तुम्हारे विश्वास में बाधक है तो मैं इस रूप को ही समाप्त कर दूँगी, पर तुम्हारे मन में वासना की मलिनता न सह सकूँगी।

सिंहनी की तरह गरज रही थी समिधा - भयग्रस्त-सा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो बैठ गया वहीं गीली जमीन पर मलय। अपनी इस हरकत पर स्वयं निठाल-सा होने लगा। क्षमा मांगने की ताकत भी खो चुका था। बस... पैर की अंगुली से धरती को कुरेदता घंटों बैठा रहा... समिधा कब चली गई अपनी संध्या करने ज्ञात नहीं हो सका उसे।

सर्द हवाओं ने उसके शरीर में प्रवेश कर उसकी मौन को तोड़ा। बस तब से उस आश्रम से निकलर जो गया तो फिर कभी आश्रम तक नहीं पहुँच पाया।

बस... एक प्रथम और अंतिम पत्र मिला था समिधा का उसे। लिखा था - मलय ! ये मनुष्य जीवन ही पूर्ण है। इसमें कितना ही मिलाओ, कितना ही घटाओ, कोई अंतर नहीं पड़ता। हम दोनों के बीच कितना कुछ बढ़ा हो, कितना कुछ घटा हो, लेकिन संबंधों की पूर्णता सदैव शेष रहेगी। सांझ की बेला है। सांस पुरूष के बिना पूर्ण नहीं, मेरी पूर्णता तुम हो। तुम ही वह पुरूष हो, जो प्रकृति को पूर्णत्व प्रदान करता है।

यूँ तो समाधि लेना चाहती थी, पर चिता को अग्नि मिले बिना स्वर्ग प्राप्त नहीं होता। जीवन भर पूर्णता की तलाश में भटकती रही, ज्ञान बाँटती रही, पर मेरी पूर्णता तभी है जब तुम मेरी चिता को अग्नि दो। ये निश्चित है कि अगला जन्म तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के लिए अवश्य लूँगी। प्रेम पूर्णता है लक्ष्य की...।

कितना कुछ सोच गया मलय। अब चलने की तैयारी है, वह भी खड़ा हो गया।

शवयात्रा में शव को कंधे पर उठा लिया है जिसे पाकर और खोकर भी वह पूर्ण है, संपूर्ण है। फिर वह पहुँच गया... गंगा किनारे श्मशान घाट। अब वह अग्नि-श्लाका से जला देगा उसे जो समिधा रही जीवन भर, सुलगती रही प्रेम के लिए। आज चंदन की लकड़ी में धू-धू कर जल जायेगी वासनाएँ, इच्छाएँ, आकाक्षाएँ और इस पर वह उसके जीवन में बनकर रहेगी पूर्ण 'समिधा'..।

मलय कोई किताब दे गया था प्रश्नों के महाचक्र में उलझे मन को सुलझाने के लिए। किताब का ये आदान-प्रदान समय के साथ कब हृदय के आदान-प्रदान का कारण बन गया... दोनों अनजान रहे।

यादों की महक

शतदल मंजरी
गुड़गाँव, हरियाणा
मो0 8292090400

उदास आँखों से
जिसमें...
न कोई राग था, न ही कोई रंग
और तुम्हें विदा किया था मैंने
कहा था...
हे संध्या के, सपनों के सुरमित,
सुगंधित, खिलते फूलों पर
मंडरानेवाले भ्रमर
शीघ्र लौट आना।
पर मेरे स्वप्निल बाग में
तेरा बाट जोहते, थकते,
एक के बाद एक
कुंभलाते, झरते...
पलाश के लाल-लाल
टुह-टुह फूल।
दिन गुजरता रहा,
रात थकती रही
तेरे इंतजार में...
क्योंकर रूकती
समय की गति
मेरे लिए...।
प्रियतम,
तुम आये न आये, पर
तुम्हारी यादों की महक
मेरी सूनी आँखों में
तैरती रही,
तैरती रहेगी
तब तक ...
जबतक मेरा वजूद
हवा में
गुम न हो जाये...।

❋❋❋

मूल्यांकन

डॉ. रामकिशोर शर्मा
संस्थापक सदस्य 'संभाव्य'

दर्शन के संधान बदलते हैं,
किये गये अनुसंधान बदलते हैं,
व्यक्ति बदलते हैं
अवधारनाएँ बदलती हैं,
सौन्दर्य बोध बदलते हैं,
रीति-रिवाज बदलते हैं,
श्रृंगार और सौन्दर्य की -
शैलियाँ और शिल्प बदलते हैं।
अनुभूतियाँ बदलती हैं
विचारों के संघर्ष और
उनकी व्यूह-रचनाएँ बदलती हैं।
समस्याएँ बदलती हैं,
समाधान बदलते हैं,
फैशन का वेश बदलता है,
परिवेश बदलता है
सामाजिक सोच बदलती है
जिसे स्वीकारा समाज
अस्वीकारा भी उसे समाज
निरंतर उसकी लकीरें बदलती है।
पट खोलें अन्तस्तल के
करें अभिनन्दन मानवता के,
नव-पुरातन संस्कृति के,
सभ्यता के सनातन के,
सतत शाश्वत विवेचन के।

❋❋❋

अभी बाकी है मेरी उड़ान

शेराज खान

अभी बाकी है मेरी उड़ान
पाना है अपना मुकाम,
हो रहा है, मुझको आभास
करना है ऐसा प्रयास
हो जाउँ मैं भी कामयाब
दिख रही मेरी तस्वीर
याद आ गया मुझको वो वीर
किया था जिसने संघर्ष
बदल दिया अपनी तकदीर
अभी बाकी है मेरी उड़ान
पाना है अपना मुकाम

लगाऊँगा अपने सपनों को पंख
बनूँगा एक ऐसा प्रकाश
दूर होगा ये अंधकार
है मुझे पूरा विश्वास
गाता हूँ आशाओं के गीत
मिल जायेगी मुझको भी जीत
रचूँगा एक नया इतिहास
है मुझे पूरा विश्वास, क्योंकि
अभी बाकी है मेरी उड़ान
पाना है अपना मुकाम

कहानी

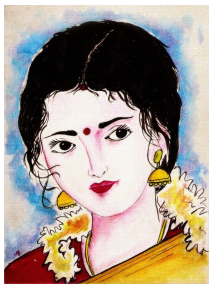

चिर प्रतीक्षा

डॉ. हीरालाल प्रजापति
इटारसी, होशंगाबाद, मध्यप्रदेश
मो0 930260213

वह लड़की कभी भी मेरी मोहब्बत की तलबगार न थी क्योंकि न तो मैं खूबसूरत ही था और न ही कोई अमीरजादा। एक मामूली नौकरी करने उसके शहर में आया था। मेरे मकान मालिक की इकलौती व अत्यंत खूबसूरत लाडली बेटी थी वह। मैं चौबीस का था और वह उन्नीस बीस के लगभग।

प्रारंभ से ही सहशिक्षा काल के दौरान मेरा अनेक लड़कियों से परिचय हुआ, दोस्ती भी खूब हुई किन्तु मेरी बदसूरती और काली कलूटी रंगत ने मेरी मोहब्बत की लालसा को कभी पूरा नह होने दिया। जिससे भी प्रेमाग्रह किया उसी ने आइना दिखाकर मेरी हँसी उड़ा कर रख दी और अंततः शनैः शनैः मोहब्बत और शादी के ख्याल दिल ही दिल में दम तोड़ने लगे। अपने प्रेम निवेदनों को जिस-तिस के द्वारा ठुकराए जाने के बावजूद भी कभी मुझमें कुछ कर गुजरने की प्रेरणा जाग्रत नहीं हुई। मैं चाहता था कोई तो कहे ''कुछ करके दिखाओ'' पर कभी ऐसा न हुआ... और जैसे तैसे एम.ए. करके यहाँ नौकरी पर आ गया।

पहली बार उस सुंदरी को देखकर मोहब्बत प्राप्ति के मरे हुए विश्वास पुनः जीवित हो उठे फिर भी पिछली घटनाओं ने मेरे प्रेम निवेदन की हिम्मत पस्त कर रखी थी इसलिए यूँ ही एक तरफा मोहब्बत की आग में जलते हुए एक वर्ष बीत गया। कुछ दिनों की छुट्टियों में घर आकर मुझे लगा कि उसके बगैर जिन्दगी संभव नहीं। छुट्टियाँ पूरी किये बगैर ही लौट आया।

वह कभी-कभार ही मेरे कमरे पर आया करती थी, किन्तु मैं छिप छिपाकर रोज ही उसके नजारे खिड़की दरवाजों की दरारों से कर लिया करता था। उसके पिताजी के साथ उसके घर पर ही अक्सर शाम को शतरंज की दो एक बाजियां हो जाती थीं जिसमें मैं सदैव हार जाता था और वह मजाक उड़ाती थी। खैर। एक दिन चाय पान के दौरान उसने मुझे ''अच्छा कहा। मैं इस गलत फहमी का शिकार हो गया कि हो न हो वह भी मुझे पसंद करती है बल्कि प्यार भी करती है और उस दिन के बाद से उसके मान सम्मान को मैं उसकी मोहब्बत का इज़हार समझने लगा। एक दिन बहुत हिम्मत जुटाकर एक लव लेटर उसे लिख ही डाला। बड़े ही सहज भाव से ''क्या है'' कहकर उसने पत्र ले लिया। एक सप्ताह तक कोई लिखित जवाब नहीं मिलां कई खत लिखे और वह अजीब सी रहस्यमयी मुस्कराहट के साथ उन्हें हर बार स्वीकारती रही... किन्तु जवाब न दिया। जब असहनीय हो गया तब एक आखिरी खत में आत्महत्या की धमकी देकर हाँ या ना में तुरंत जवाब माँगा। दुर्भाग्य से वह खत उसकी माँ द्वारा पकड़ा गया।

जिस वक्त बेईज्ज़त करके मैं उसके घर से निकाला जा रहा था तब भी वह रहस्यमयी ढंग से मुस्कुरा रही थी और उसकी आँखों में व्यंग्य जैसा भाव देख कर मैं शर्म से धरती में गड़ा जा रहा था।

फिर मुझसे उस शहर में नौकरी न हो सकी। अपने गाँव आ गया था, बेमन से किसानी करने लगा।

ज़िन्दगी से बेज़ार होकर मर मर कर ज़िल्लत का जीवन काट रहा था। घर वाले मेरी हालत पर तरसते भी थे और बिगड़ते भी।

रात की तन्हाई में मोहब्बत का दर्द आज इतना बढ़ा, अपमान की कसक इतनी तीव्र उठी कि उस लड़की को अपनी मौत का ज़िम्मेदार ठहराते हुए एक सुसाइड-नोट लिखा और मौत का आसान तरीका सोचने लगा।

अपनी जिन्दगी कि शाम के स्वागत में खूब स्फूर्ति तथा प्रसन्नता से अपने आपको दिनचर्या में ढालकर मौत को निगलने ही जा रहा था कि दरवाज़े पर पोस्टमैन कि दस्तक हुई। उस लड़की का मेरे नाम एक रजिस्टर्ड पत्र आया था। झट पट खोलकर किसी अनजान सुप्रतीक्षित आशा से पढ़ने लगा। लिखा था...

''मुझे यकीन है आप आत्महत्या नहीं कर सकते। आपके बारम्बार दयनीय व सच्चे प्रेमाग्रह ने और उस दिन की अपमान जनक घटना ने आपके जाने के बाद मुझे आपके प्रेम को स्वीकार करने पर विवश कर दिया है, किन्तु एक ही शर्त पर मैं आपसे शादी का वायदा करती हूँ कि तीन साल के अन्दर अन्दर आप अफसर बनकर मेरा हाथ मांगने आयें। आपके और मेरे बीच न कोई पत्र-व्यवहार होगा और न मेल-मिलाप। आप शूद्र है और मैं उच्च वर्ण... किन्तु अपनी को मना लूंगी। अवधि याद रहे... अधिकतम तीन साल। अनवरत प्रतीक्षारत... सिर्फ और सिर्फ आपकी...अनन्या।

साथ में उसका एक अत्यंत सुन्दर फूल साइज रंगीन फोटो भी था।

इस पत्र से मेरी ज़िन्दगी का रंग-ढंग बदल गया। टूटे कदम पंख बन गए। सब कुछ भूलकर प्राणपण से परीक्षा की तैयारी में अनवरत रूप से जुड़ गया। प्रेरणा रंग लाई। तीसरा साल जाते जाते में कलेक्टर के पद हेतु चयनित हो गया। बड़ी उमंगों सहित उसके घर उसका हाथ मांगने अपने पिताजी के साथ पहुंचा।

ड्राइंग रूम में ही उसकी तस्वीर पर चढ़ी चन्दन की फूल माला ने मुझ पर तीव्र वज्राघात किया। मैं निष्प्राण सा हो गया। उसके पिता ने सुबकते हुए बताया कि... मेरे जाने के सप्ताह भर बाद ही एक दुर्घटना में उसके दोनों पैर जाते रहे व फूल-सा सुन्दर चेहरा मांस उधड़ जाने की वजह से कुरूप हो गया। हालत सम्हलने पर उसने मुझे वह पत्र लिखा जिसे खुद उसके पिता ने रजिस्ट्री द्वारा मुझे प्रेषित किया। कुछ ही रोज बाद अपनी विकलांगता और बदसूरती के बोध से आत्म प्रताड़ित होकर एक साथ नींद की कई गोलियां लीलकर सदा-सदा के लिए सो गई।

एक कभी न भरने वाली कमी, एक कभी न मिटने वाली असहनीय तड़प लेकर मैं अपनी लाश को किसी तरह ढो लाया।

अब भी यही सोचता हूँ कि यदि वह जिंदा होती तो क्या उस ''बदसूरत'' (जिसकी खूबसूरत तस्वीर को मैं ढाई साल तक शिद्दत से चूमता रहा) से मैं (बद्सूरत) मोहब्बत कर पाता! यदि नहीं तो मुझे मोहब्बत के नाम पर ठेंगा दिखाने वाली सुंदरियों ने मेरे साथ कोई अन्याय नहीं किया था न कि उस लड़की ने जिसको लव लेटर पकड़े जाने के बाद बेइज्ज़त होते वक्त मैंने मन ही मन उसकी बर्बादी की असंख्य बद्दुआएँ जाते-जाते दे डाली थीं... क्या वे ही तो उसे नहीं लग गईं ? इस अपराध बोध ने कि ''मैं ही उसकी कातिल हूँ'' प्रायश्चित स्वरूप आज तक मुझे विवाह नहीं करने दिया... और न आगे कभी करूँगा...

❋❋❋

संभाव्य संदेश

दिल और दौलत

दिल और दौलत एक विषम ध्रुवीय सत्य है। जमाने को पता है कि दिल के कद्रदान दौलत की हिफाज़त नहीं कर पाते और दौलत की हिफाज़त करनेवाले दिल की कद्र नहीं कर पाते। लेकिन पुरूपार्थी होने का अधिकार उसे मिलता है जो इस विषम ध्रुवीय अनचाहे-मनचाहे सत्य से इतर साम्य-स्थैतिक विकल्प व्युत्पन्न करने की योग्यता रखता है। ऐसे पुरूषार्थी ही दिल और दौलत को एकसाथ आत्मसात कर मर्त्यलोक में ऐश्वर्य का यशभागी होता है।

कहानी -

रानी

सुजाता चौधरी
मो0 9431871677

दोनों भैया के जाने के बाद मम्मी-डैडी उदास हो गए थे, रानी भी बहुत उदास हो गई थी। घर कितना सूना लग रहा था। हालाँकि रानी का काम तो काफी बढ़ गया था। जबसे दोनों भैया हॉस्टल से आए थे, मम्मी दिनभर रसोई में घुसी ही रहती और पीछे-पीछे रानी। सिर्फ रसोई का काम ही नहीं, रानी, सोनू भैया, मोनू भैया दोनों को संभालती। घिरनी की तरह नाचती - 'रानी पानी', 'जी भैया जी'। 'रानी सिर दबाना जरा', 'जी भैया जी'। रानी को दोनों भैया अच्छे लगते हैं टॉफी चॉकलेट भी खूब खिलाया। हाँ कभी-कभी सोनू भैया कसकर गाल खींच देते या कसकर भींच लेते तब रानी को जरूर बुरा लगता।

रानी गाल सहलाते-सहलाते बाथरूम में जाकर आईने मे देखती तो गालों पर कहीं भी लाली नजर नहीं आती, रंग जो काला था, किन्तु लहरता बड़े जोर से। लेकिन आज का सूनापन उसे लहर से भी ज्यादा तकलीफ दे रहा था !

रानी जब आई थी, दोनों भैया हॉस्टल में ही थे, तब उसे इतना सूना नहीं लगा था। वैसे भी माँ के मरने के बाद उसे कहाँ कुछ अच्छा लगता था? माँ के मरने के बाद पगली सी बन गई थी। उस समय पापा पंजाब कमाने गये थे, वहाँ से दो रूपए भी नहीं भेजा। घर में खाने के लिए कुछ नहीं था, माँ कितनी बीमार थी, कितनी भूखी थी। रानी ने देखा, माँ खपरैल का टुकड़ा खा रही है। रानी ने सोचा माँ को क्या हो गया, जब भी मैंने खपरैल के टुकड़े को मुँह में रखा माँ कितना गुस्सा हो जाती थी और आज स्वयं खपरैल खा रही हैं। रानी ने दौड़कर माँ को पकड़ा, ठीक वैसे ही जैसे माँ रानी को पकड़ती थी - 'माँ ये खपरैल का टुकड़ा है इसे मत खा'। माँ ने कैसे देखा था रानी की ओर एकटक, बस देखती ही रह गई। आँखे खुली थीं पर स्थिर सी हो गई थीं। एक दो बार रानी ने 'माँ-माँ' कहा पर माँ ने कुछ नहीं कहा। रानी दौड़ती हुई पड़ोस की काकी के पास गई - 'काकी ! माँ कुछ नहीं बोलती, मैंने तो सिर्फ खपरैल खाने से मना किया था। वे भी तो मुझे खपरैल खाने से मना करती थी, मुझे लगा खपरैल खाना गंदी बात है, तभी तो माँ खाने से मना करती है। इसीसे मैंने भी मना किया काकी, पर माँ बोलती क्यों नहीं ?' काकी समझ गई अब रानी की माँ कभी नहीं बोलेगी। पापा आए तबतक माँ को पैसों और खाने की जरूरत नहीं रह गई। कितना रोती थी रानी, खपरैल के उस टुकड़े को तो छोड़ती ही नहीं। चौबीसों घंटे छाती से चिपकाये रखती जैसे उसकी माँ इसी में समा गई हो। अपनी सारी बातें उसी टुकड़े को सुनाती रहती। रानी के बाल काले से भूरे रंग के हो गए थे। अपने आप बालों की लम्बाई भी घटती जा रही थी। जब माँ स्वस्थ थीं, कहीं से भी इंतजाम कर रानी के बालों में तेल जरूर लगाती। सप्ताह में दो दिन का तो नियम ही था, और चोटी... तो शायद ही कोई दिन ऐसा होता जो नहीं कर पाती। बीमार पड़ने के बाद भी किसी तरह बैठकर चोटी तो कर ही देती। माँ मेले से रानी के लिए लाल रिबन-फूलों वाला, जब लेकर आई थी रानी कितनी खुश हुई थी। जब माँ दो चोटी करके उसमें रिबन का फूल बना कर बांध देती तो रानी पड़ोस की काकी की टी.वी. में आने वाली रसना गर्ल से अपने आपको कम नहीं समझती थी... पर आज... अपने सूखे-उड़ते बालों पर हाथ फेरती उसका जी कर रहा था किसी तरह माँ के पास चली जाएं। रानी ने काकी को पापा से कहते हुए सुना - 'जोगी ! तुम्हारी पत्नी तो भूख से पागल होकर जान दे दी, कमसे कम इस बेचारी को तो सम्भाल, नहीं तो ये भी पगला जाएगी। 'रानी सोच रही थी-माँ कहाँ पागल थी, पागल तो पत्थर लेकर मारने के लिए दौड़ता है, पर माँ तो अपने हिस्से का खाना भी मुझे खिला देती थी। सिर्फ पत्थर खाने से कोई पागल हो जाता है? उस दिन भी तो माँ ने इशारे से पूछा था 'खाया? रानी ने सिर हिला दिया था- हाँ उसे पता था, नहीं कहने से माँ परेशान हो जाएगी। रानी ने सोचा-चुप रहें, लेकिन मन नहीं माना, जोर से रोते हुए बोली 'मेरी माँ पागल नहीं थी।' पापा ने बड़े प्यार से रानी को गोद में बिठा कर कहा 'रो मत। मैं तेरा माँ-बाप दोनों बनूँगा।' पर पापा माँ कैसे बन

सकते थे? माँ तो कोई नहीं बन सकता तो पापा कहाँ से बनते? पापा पंजाब से रानी के लिए एक गुड़िया लाए थे, उसे निकालकर रानी के हाथ में दे दिया। रानी ने माँ के हाथ की अंतिम निशानी खपरैल को फेंक दिया और गुड़िया को सीने से लगा लिया। रानी को लगा कि गुड़िया का चेहरा तो बिल्कुल उसकी माँ जैसा है, हु-बहू। पापा ने भी देखा, रानी गुड़िया में रम गई है। वे भी निश्चित हो गए। पंजाब से लाए पैसे माँ के श्राद्ध में खर्च हो गए। काकी ने मना किया भोज-भात मत कर, पर पापा नहीं माने-मैं नहीं रहता था, तब और बात थी। कल कोई मेरी बच्ची को ताने देगा 'माँ के श्राद्ध में भोज हुआ था? तब कैसा लगेगा इसे?' काकी गुस्सा हो गई - 'जो मन है करो, तुम्हारी बच्ची ने यह नहीं देखा कि भूख से तड़प-तड़प कर उसकी माँ मर गई।' काकी गुस्से में बड़बड़ाती हुई चली गई - 'श्राद्ध करेगा तभी न कोई अभागा बाप आकर अपनी बेटी इसके पल्लू में मरने के लिए बांध जाएगा।' रानी कुछ नहीं समझी। भोज करने से कोई बाप अपनी बेटी का पल्लू कैसे बांधेगा? बड़े लागों की बात इतनी अजीब क्यों होती है समझ में आती ही नहीं। रानी ने लाख मगजमारी की, पर पल्ले कुछ नहीं पड़ा। भोज के दिन दाल-भात, सब्जी के साथ पापा ने पापड़ भी बनवाया था। रानी सोच रही थी-इतना स्वादिष्ट भोजन खाकर माँ कितनी खुश होती? रानी ने सोचा - 'दौड़कर गुड़िया ले आऊ, कम से कम उसे दिखा तो दूँ', पर जैसे ही उठी पापा ने रोक दिया। रानी को भी एक कौर नहीं धंसा। दौड़ कर भाग गई काकी के पास।

पंजाब के पैसे कितने दिन टिकते, उल्टे कर्ज हो गए। काकी न गुस्साते हुए कहा-कहा था न पर...।' 'क्या करता काकी...' कह पापा दुखी होकर बैठ गए, पापा की आंखों में आँसू छलक रहे थे। कुछ भी हो रानी को अपना पापा बहुत अच्छा लगता है, दौड़कर गई अपने हाथों से पापा के आँसू पोछने लगी। पापा ने सीने से लगा लिया 'बस एक इसी की चिंता है काकी, कमाने जाऊँगा तो इसे किस पर छोडूंगा?

काकी ने कहा-'मुंगेर में एक साहब-मेमसाहब हैं, बड़े अच्छे लोग हैं, उनके यहाँ रहेगी तो वे लोग दो पैसे भी देंगे, कुछ पढ़ाई भी करा देंगे। सबसे अच्छी बात की खाए-पहनेगी अच्छा। कहो तो बात करूं? मुझझे कहा था कोई ऐसी लड़की या लड़का मिले तो बताना। वैसे रानी की माँ होती तो इसके लिए हरगिज तैयार नहीं होती, आगे तुम सोचकर बताना।'

'सोचना क्या है काकी और उपाय भी क्या है? अच्छा खाएगी पहनेगी, दो अक्षर पढ़ भी लेगी। मैं भी निश्चिन्त होकर कमा सकूंगा।' रानी ने पहले तो विरोध किया - 'पापा हमें भी साथ लेते चलो पंजाब, पर पापा नहीं माने। आखिर रानी को ही बात माननी पड़ी, पापा परेशान जो हो रहे थे।

मुंगेर आई तो आंटी ने गले से लगा लिया। पापा ने सिखाया था - 'आंटी बोलना। शहर में सब आंटी बोलते हैं। रानी ने जब आंटी बोला तो उन्होंने बड़े प्यार से गले से लगाकर बोला - ''आंटी नहीं, मुझे मम्मी और इन्हें डैडी कहना। आज से तुम हमारी बेटी हुई, दोनों बेटे हॉस्टल में हैं, घर एकदम सूना है, बेटी है भी नहीं, भगवान ने अब भेज दिया।''

रानी खुश हो गई, आंखों में आँसू भर आए। पर रानी ने लाख कोशिश की आंटी का चेहरा माँ से मिले, पर उसे लगा थोड़ा सा भी नहीं मिल रहा है। आंटी सुंदर हैं, पर माँ जैसी प्यारी नहीं हैं। माँ की आँखे कैसे निहारती थी, रानी को लगता उसी में समां जाएं। पापा भी खुश हो गए ''समझदार है मेरी बिटिया। कोई शिकायत का मौक नहीं देगी। आज से आप ही इसके मम्मी-डैडी हैं। तीन महीने बाद जब मैं पंजाब से आऊँगा, इसे घर ले जाऊँगा, मेरी भी तो बस यही एक बच्ची है।'' पापा चले गए। रानी अपने हाथ में गुड़िया को पकड़े पापा को जाते देखती रही और उसी समय से दिन गिनने लगी पापा के लौटकर आने का... एक दिन... तीन महीने में एक दिन काम हो गया। लेकिन पापा पंजाब से आए कहाँ? गाँव से दीना काका भले ही आए थे। मम्मी को बताया कि इसके पापा ने दूसरी शादी कर ली है मेमसाहब, अब वह क्या आएगा। रानी से पूरे दिन कुछ भी नहीं खाया गया। मम्मी ने भी समझाया 'नहीं आएगा तो क्या, हम है न' लेकिन रानी यही सोचते-सोचते सोई कि शादी करने से पापा के नहीं आने का क्या संबंध है? क्या वह उसके पापा नहीं रहे, पर नहीं समझ पाई। सवेरे उठी तो आंखों में आँसू भरे थे।

रानी की आँखों के आँसू मम्मी ने पोंछा - 'कोई बात नहीं हम हैं तुम्हारे मम्मी-डैडी।' आँसू पोंछते वक्त मम्मी का चेहरा कुछ-कुछ माँ से मिल रहा था, रानी को लगा।

रानी ने मम्मी की बात तो मान ली, पर रोज भगवान से प्रार्थना करती 'हे भगवानजी ! जल्दी से मेरे पापा को मेरे पास भेज दीजिए। एक तो माँ को छीन लिया और अब पापा...। गर्मी छुट्टी में दोनों भैया के आने से रानी का मन इन बातों से हट गया। कभी सी.डी पर फिल्म, तो कभी कोल्डड्रिंक, तो कभी टाफी, वे लोग कुछ भी खाते रानी को जरूर देते। मम्मी-डैडी भी खुश थे, रानी भी खुश थी और दोनों भैया के जाने के बाद मम्मी-डैडी दुखी तो रानी भी दुखी।

शाम को जब बाहर से मम्मी-डैडी 'चंदु' को लेकर आए तो अचानक घर में रौनक आ गई। चन्दु कभी इधर दौड़ता, कभी उधर और उसके पीछे मम्मी-डैडी और उसके साथ रानी भी।

चूल्हा ऊँचा था, किन्तु स्टूल पर चढ़कर रानी चूंद के नहाने के लिए पानी गर्म कर ले आई। टब में जब शैम्पू मिलाने लगी, तो लगा उंगलियाँ जल जाएगी। दर्द होने लगा, किन्तु जब चन्दु उससे नहाकर निकला तो बिल्कुल दूध-सी सफेदी देखकर रानी भी खुश हो गई, उसकी ऊँगली की जलन अपने आप कम हो गई।

मम्मी तो खूब हँसती, किन्तु डैडी हमेशा चुप रहते। शायद ही कभी हँसते, किन्तु वे भी आज बहुत खुश थे। रानी को बड़ा अच्छा लग रहा था। चंदू के लिए सब कुछ नया-नया आया था। नया साबुन, नई कंघी, नया बिस्कुट का डिब्बा, सोने के लिए नया बिस्तर-बेहद मुलायम।

मम्मी कहतीं - 'अभी तीन ही महीने का है, रानी से तो बहुत छोटा।' रानी का भी मन कर रहा था, चंदू को गोद लेने का लेकिन मम्मी-डैडी में ही होड़ लगी रही। रानी का नंबर उस दिन आया नहीं।

महीने भर में चंदू सबसे हिल-मिल गया। रानी को भी कभी-कभी बॉल फेंकने दिया जाता, हालांकि ज्यादातर बॉल फेंकने का काम डैडी ही करते। चंदू जंप कर बॉल लपककर ले आता। उस समय डैडी का चेहरा खुशी से दमकता रहता। दो महीने कैसे बीत गए न रानी को पता चला, न मम्मी-डैडी को।

कल से ही रानी की तबीयत सुस्त हो गई थी। सवेरे उठा ही नहीं जा रहा था। किसी तरह चाय बना पाई। फिर देह ने कहना नहीं माना तो बिस्तर पर जाकर लेट गई।

मम्मी ने आवाज भी दिया, 'रानी जा चंदू को टोट्टी कराकर ले आ।' किन्तु रानी का शरीर हिला ही नहीं, वैसे यह काम रानी को मन से पसंद था। टट्टी कराने सामने के पार्क में ले जाती और उसके बाद चंदू के साथ खूब खेलती। चंदू भी मम्मी-डैडी के नहीं रहने पर रानी के साथ खूब खेलता। किन्तु आज हिम्मत नहीं पड़ी। उठा ही नहीं गया।

''बिछावन पर पड़ी रहोगी, तो तबियत खराब लगेगी ही। आलस्य त्यागो। मुँह-हाथ धोओ। काम मत करना, लेकिन उठकर बैठ तो सही, नहीं तो डैडी गुस्सा हो जाएंगे'', मम्मी ने कहा।

रानी को भी डैडी से डर लगता है, खासकर जब वह आँखे टेढ़ी करके देखते थे। गमछा ओढ़कर ही बरामदे में ऊकड़ु होकर रानी बैठ गई।

'चन्दू कम ऑन्, चन्दू कम ऑन, डैडी ने आवाज दी।' लेकिन चन्दु सोफे पर बैठी मम्मी के पैरों पर आकर सिर रख कर शरीर को ढीला छोड़कर लेट गया।

'देखो तो बदमाश को, बुला मैं रहा हूँ और यह लाड़ तुमसे लड़ाने पहुँच गया।' डैडी ने मुस्कुराते हुए मम्मी से कहा।

'लाड़ आप लड़ाते हैं, लेकिन रोज कौन इसे शैम्पू - साबुन से नहलाता है, कौन इसकी कंघी करता है, किसने अभी-अभी तरबूज काटकर खिलाया है?' मम्मी ने चन्दू के मुलायम शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा।

'कुछ भी कहो नीतू, इस चन्दू ने सोनू-मोनू के जाने से इस घर में जो सूनापन आ गया था, उसे समाप्त कर दिया, एकदम से रौनक ला दी।' डैडी बहुत प्यार से चंदू को निहारते हुए, मम्मी से कह रहे थे।

डैडी की इस बात से पता नहीं क्यों रानी का मन थोड़ा बुझ गया। काश... वह भी चन्दू जैसी उछल-कूद कर पाती। मम्मी-डैडी के पैरों पर सो पाती।

'कम ऑन चन्दू... कम ऑन।' डैडी ने चार-पांच बार आवाज दी किन्तु चन्दू नहीं उठा।

डैडी घबरा गए। धम्म से जमीन पर बैठ गए। चंदू के शरीर को छूकर देखने लगे।

'आप जिस काम से जा रह हैं जाइए, मैं देख लूंगी', मम्मी ने कहा।

क्या देख लोगी, दिखाई पड़ रहा है। कल रात बारिश हुई, फिर भी सारी रात चन्दू ए.सी.में सोया रहा, थोड़ी सी गर्मी बर्दाश्त नहीं कर सकती थी? ठंड लग गई है, कहीं निमोनियां न हो गया हो।' डैडी ने मम्मी को झिकड़ते हुए कहा।

'ए.सी. कहाँ चली थी पूरी रात, 3 बजे ही बंद कर दिया था।' मम्मी ने सफाई दी।

इसीसे रानी को डैडी अच्छे नहीं लगते हमेशा मम्मी को सफाई देते ही रहनी पड़ती थी। रानी को भी कितना मजा आता था ए.सी. में सोने पर। चंदू के आने से पहले तो मम्मी कभी-कभी उसका बिस्तर भी ए.सी. रूम में लगवा लेती। किन्तु जबसे चन्दू आया है, उसका नंबर कभी आया ही नहीं।

डैडी की उँगलियां मोबाईल फोन पर घूमती ही रही। जब तक डॉक्टर ने फोन नहीं उठा लिया। जबतक फोन नहीं उठाया, डॉक्टर पर भुनभुनाते ही रहे, 'कैसा डॉक्टर है? इतने समय तक फोन पर व्यस्त रहता है ऐसे में तो पेशेंट की जान चली जाए।' उधर से फोन उठाते ही डैडी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा - 'डॉक्टर साहब चन्दू न दौड़ रहा है, न कूद रहा है। बिस्कुट भी नहीं खा रहा। प्लीज जल्दी आइए।'

'रानी ! चन्दू ने कुछ गड़बड़ तो नहीं खाया, सच-सच बताना, वहाँ पार्क में? डॉक्टर जानना चाहते हैं,' डैडी ने रानी के ऊपर आँखे तरेरते हुए कहा।

रानी डर गई। बताना जरूरी था। चन्दू बीमार है। 'कल पार्क में एक कौआ हड्डी का एक टुकड़ा गिरा दिया, ठीक चन्दू के सामने। उसे थोड़ी देर तक चाटा था।' रानी ने डरते-डरते कहा।

पुरानी हड्डी होगी, पता नहीं कब की? बस समझ गया उसी से पेट में इन्फेक्शन हुआ होगा। 'तुम्हें कल ही बताना चाहिए था।' डैडी ने झल्लाकर कहा।

क्या बताती रानी कल से तो खुद उसकी तबियत सुस्त थी। चुप रही।

डॉक्टर ने अच्छी तरह चेकअप किया। 'बीमारी तो कुछ नहीं है। वैक्सीन सब बराबर पड़ रहा है?' डाक्टर अंकल ने पूछा।

'हॉ, डॉक्टर साहब, आपकी क्लीनिक में ही दिलवाता हूँ। अमरिका वाला ही वैक्सीन दे रहा हूँ। आपने इसके लिए जो डाईट चार्ट बना दिया है, हमलोग पूरा फॉलो कर रहे हैं।' डैडी ने चिंतित स्वर में कहा।

रानी को लगा चन्दू सो रहा है, किन्तु उसकी बात कौन मानता? फिर पता नहीं कहीं डैडी और भी गुस्सा हों जाएं ! रानी चुप ही रही।

'मेरे तो हाथ-पॉव फूल रहे हैं, डैडी ने कहा।

'धैर्य रखिए। सोनू-मोनू भी थोड़ा सा बीमार पड़ता था, इनका यही हाल होता था। डॉक्टर साहब, मैं ही हिम्मत रखती हूँ।' मम्मी ने डाक्टर अंकल से कहा।

डॉक्टर अंकल ने फिर चेकअप किया। लकिन यह क्या शरीर पर हाथ फेरते ही चंदू उछला और छलांग लगाकर भागा। दौड़कर बॉल ले आया।

डैडी ने लपककर उसे गोदी में उठा लिया - 'तू तो डरा ही दिया था।' आँखों में आंसू और चेहरे पर मुस्कान थिरकने लगी।

'डॉक्टर साहब बहुत-बहुत शुक्रिया। आपके तो स्पर्श में जादू है।' मम्मी ने कहा।

चन्दू को उछलते देख रानी की जान में जान आई। किन्तु उछल नहीं पायी, उसका शरीर टूट जो रहा था। डॉक्टर अंकल के छूते ही चन्दू ठीक हो गया, यह सुनकर रानी भी धीरे-धीरे डाक्टर अंकल के पास आ गई।

'डा. अंकल मेरी तबियत भी ठीक नहीं है, सुस्ती सी लगती है। देह तप रहा है, मुँह कसैला लग रहा है।' रानी ने धीरे-धीरे कहा।

'बच्चे को बस यही बीमारी होती है, नकल की। थोड़ी सी गर्म देह है, निन्यानवे से सौ तक होगा। जाओ, मम्मी से जाकर एक पारासिटामोल ले लो।' डैडी ने रानी के हाथ को छूते हुए कहा।

रानी खड़ी रही। 'अंदर जाओ, डा. अंकल जानवर के डॉक्टर हैं। तुम जानवर नहीं हो।' डैडी ने डांटती हुई आवाज में कहा।

क्यों नहीं हूँ जानवर, रानी सोच रही थी। डॉक्टर अंकल हाथ तो फेर देते, जल्दी अच्छी हो जाती... आज पहली बार रानी को गोरा चिट्टा, सफेद सुन्दर चन्दू बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था।

❋❋❋

कायर सत्य

शशांक शुक्ल
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

वर्षों से अपने प्रतिमानों को,
नित उत्तुंगता प्रदान करता सत्य,
चिंतित हो विचारता भविष्य को,
परिस्थितियों को जान डरता सत्य
युगों से परीक्षा लेता आया
न कभी करूणमयी हुआ है,
इति में स्वयं को प्रकाशित करता,
सत्य सदा ही विजयी हुआ है।
कहीं ओंट में छुपकर बैठा है,
अन्वेषक की दृढ़ता को तोलता,
सत्य स्वयं को श्रद्धेय बनाये,
समर्पण भावों को नित्य टटोलता।

पर सत्य की ये विशिष्टता,
वर्तमान में दुर्बलता सिद्ध हुई है,
चंचल चपल सरल असत्य ने,
सत्य की मसृण सतह छुई है।
असत्य सहज है, सुगम है,
उसमें निहित शत्-विकल्प है,
चरमोत्कर्ष तक भला कौन जाये,
करों में क्षण, बहुत अल्प है।
द्रुतगामी विकास की गति हुई है,
मानव-मेधा भी थकी हुई है,
उसको खंगालने की ऊर्जा नहीं है,
जिस सत्य ने आकृति ढ़ँकी हुई है।

सत्य की प्रवृत्ति है छुपने की,
स्वयं को सहजकर रखने की,
कोई उसे ढूँढ़े तो दिखे वो,
विशेष प्रयास की राह तकने की।

पर गतिमान काल की गणना में,
सत्य के दोष छिप ना सके,
अनवरत संघर्ष क्षमता, विश्वास,
सब लुप्त हुये, दिख न सके हैं।
इन आशाओं के भार तले कि
विजय अंत में इसी की होनी है,
सत्य एकाकी हुआ है पथ में
अब विधियों की बकुची ढ़ोनी है।
अब सत्य डरता है कि कहीं
क्षणिक आवेगों के वश में आकर,
विश्व उसकी अत्पकालीन हार देखे,
शाश्वत, अटल विजय को भुलाकर।

कहानी

मौत के हवाले

अभय कुमार भारती

कनिया नक्षत्र के घुसते ही वर्षा रानी का तेवर बदल गया। बरसने लगा पानी झमाझम। घंटा-दू-घंटा नहीं, पहर-दू-पहर। आठो पहर तक। वर्षा की झड़ी लगती रही। कभी रिमझिम फुहार तो कभी मूसलाधार। फिर जब सताहा की बारी आयी तो वर्षा पूरे वेग पर आ गई। पेट फाड़ कर पानी बरसाने लग गई।

पाँच दिन हो गये मगर वर्षा रूकने का नाम नहीं ले रही थी। मानो सबकुछ लील कर ही दम मारेगी। चारो तरफ पानी का रेला उमड़ आया। नदी, नहर कुआं, खाई सब लबालब। खेतों में पानी इतना ज्यादा कि अड्डा तक नहीं दिख रहा था। सब पानी के भीतर था।

पानी पेड़-पौधों के कंठों तक छूने लगा था। सड़कों पर तेज मोटी धार चल रही थी। घुटनों के ऊपर तक।

वर्षा अब भी पूरे शबाव पर थी। लोग अपने-अपने झोपड़े में सहमे-ठिठरे पानी के थमने का आसरा देख रहे थे। लोगों को बार-बार यहीं चिंता सता रही थी कि - ''पानी और बढ़ गया तो उनका क्या होगा?

इसी भय और चिंता में लोगों के दिन गुजर रहे थे। दिन ही नहीं रात भी इसी चिंता-फिक्र के बीच कट रही थी।

दुखनी की हालात तो और बुरी थी। वह अपन टूटी मड़ैया में एक कोने में मचिया बिछाकर सहमी ठिठुरी बैठी थी। गोद में सिमटा उसका इकलौता बेटा पल्टुआ बेबस आँखों में उदासी लिये माँ को टुकुर-टुकुर ताक रहा था। शायद वह माँ की सूनी आँखों में झांककर पूछना चाहता हो - ''माँ अब क्या होगा? कब तक यूँ ही भूखे-प्यासे तड़पते रहेंगे।'' मगर बेचारी दुखनी जवाब भी क्या देती? दूसरे के घर चौका-बर्त्तन कर के पेट भरा करती थी। धूप-बँतास बर्दाशत कर खेतों में मजूरी करती, तब कहीं दो जून की रोटी मिलती। मगर इस हालात में जबकि घर से बाहर निकलना मुश्किल है कौन उसके लिए दो जून की रोटी जुटायेगा। यहाँ तो सबको अपनी जान की फिक्र लगी थी। औरों की सुधि कौन लेगा? बेबसी में उसकी सूनी आँखें डबडबा आयी थी। आँसू के कतरे उसके गालों को भिंगाने लगे थे।

घर में पानी बढ़ता ही जा रहा था। वह पानी के बीच रात के अंतिम पहर के गुजरने का इंतजार कर रही थी। अभी रात का पहर पूरी तरह गुजर भी नहीं पाया था कि गाँव में जबरदस्त का शोर उभरा :-

''भागो...भागो...। गाँव वालों जल्दी निकल भागो। सैरपुर बाँध टूट गया है। गाँव में बाढ़ आ गई है। जल्दी करो, नहीं तो जान बचाना मुश्किल हो जायेगा।'' दुखनी के कान खड़े हो गये - वह भागकर कहाँ जायेगी? किसके घर जायेगी? क्या ऊँचे मकान वाले उसे शरण देंगे ! दुखनी तय नहीं कर पा रही थी कि क्या करे !

शोर बढ़ता ही जा रहा था। पूरे गाँव में अफरा-तफरी मची थी। लोग जहाँ-तहाँ छुपने लगे थे। कुछ लोगों ने अपने दालानों पर शरण ले ली थी तो कुछ ने ऊँचे मचानों पर डेरा डाल दिया था।

बाढ़ सुरसा की भाँति अपना रूप विकराल करने लगी थी। दुखनी को लगा - अब अगर देर करती है, तो जान बचाना भी मुश्किल हो जायेगा।

मड़ैया में पानी कमर से ऊपर चढ़ चुका था। फिर पता नहीं उसे क्या सूझा वह पल्टुआ को गोद में लिये पानी को ठेलते-धकेलते घर से बाहर निकली और जोर लगाकर मड़ैया के ऊपर चढ़ गयी। वहीं वह एक फल्ली पर सिकुड़ कर बैठ गयी। पानी अब भी बरस रहा था। वह पूरी तरह भींग गई थी। ठंड

के मारे काँपने लगी थी। पल्टुआ को उसने अपने पहलू में छुपाकर आँचल से ढँक दिया था। इसके बावजूद पल्टुआ भींगने से नहीं बच सका। दोनों माँ-बेटा काफी देर तक भींगते रहे। मगर दूसरा उपाय ही क्या था? नियति मानकर वह सबकुछ बर्दाश्त करती जा रही थी। अगर उसके भाग्य में दुःख और विपदा ही लिखी है तो कौन उसे मिटा सकता है ! भोगना तो होगा ही। जबतक भोग सकती है, भोगेगी, फिर वह...। इसके आगे की कल्पना से वह सिहर उठी। कुछ सोच नहीं सकी और फटी-फटी नजरों से कहर मचाते बाढ़ के पानी को देखती रही। यह बाढ़ तो प्रलय ही मचा देगी। सबकुछ नाश करके ही विदा होगी। इसे किसी का सुख-चैन देखा नहीं जाता है, तभी तो वह उसे लीलने सुरसा की तरह आ धमकी है।'' वह पूरी तरह ख्यालों में खो गई। अनहोनी आशंका बार-बार उसे काल की भाँति बुरी तरह झिंझोड़ रही थी। अचानक उसे एक झटका लगा और पल्टुआ उसकी गोद से छिटककर पानी में जा गिरा।

पल्टुआ को पानी में गिरते देख उसका कलेजा मुँह को आ गया। ममता चित्कार कर उठी और वह एकबारगी चिल्ला पड़ी :- ''बचाओ... बचाओ। कोई तो बचाओ...। मेरा बेटा पानी में गिर गया है। वह डूब रहा है। बचा लो भैया...। इस दुखियारी का वही तो एक आसरा है। वह नहीं रहेगा तो मैं भी जिन्दा नहीं रहूँगी...।

वह दहाड़ मारकर रोने लगी थी। छाती पीट-पीट कर विलाप करने लगी। उसकी चीख-पुकार दूर-दूर तक गूँज रही थी। धरती-आकाश का कलेजा चीर रही थी।

लेकिन पास के दालानों और मचानों पर बैठे लोगों का दिल पसीज नहीं पाया था। शायद वे पत्थर की तरह कठोर थे। सब बूत बने टुकुर-टुकुर तमाशा देख रहे थे। दुखनी ने सबकी तरफ आस भरी जनरों से निहारा। आँचल पसारकर सबसे मदद करने की गुहार लगायी। लेकिन कोई ऐसा मर्द नहीं निकला, जो उसकी मदद करने के लिए आगे आये। अपनी जान जोखिम में डालकर उसके बच्चे को बचाये। सब निरीह और असहाय बने थे। सबको अपनी जान की फिक्र थी। आखिर अपनी जान तो सबको प्यारी होती है। कौन दूसरे के खातिर अपनी जान को खतरे में डाले !

दुखनी हँताश हो चुकी थी। सारी उम्मीदें छोड़ चुकी थी। अब उसका बेटा नहीं बच पायेगा! लेकिन माँ तो आखिर माँ ही होती है। उसकी ममता का थाह लगाना इतना आसान नहीं होता है। वह अपने बेटे की जिन्दगी बचाने के लिए आखिरी साँस तक जोर लगा देती है। फिर दुखनी कब पीछे रहने वाली थी। वह गुहार लगाती रही।

तभी भीड़ से एक हट्टा-कट्टा जवान निकला। शायद वह तैरना जानता था। उसने उसके बच्चे को बाहर निकालने की हिम्मत जुटाई। फांड़ा कसकर पानी में जाने की तैयारी करने लगा। दुखनी की कुछ आशा बँधी : ''शायद वह उसके बेटे को बचा ले।'' फांड़ा कसकर वह आगे बढ़ने ही वाला था कि पीछे खड़ी उसकी पत्नी ने हठात उसकी बाँह पकड़ ली और झिंझोड़ते हुए बोली : ''पगला गये हो क्या ! कौन लगती है वह जो उसके पीछे अपनी जान जोखिम में डाल रहे हो। क्या तुझे मेरा जरा भी ख्याल नहीं है। तुमको कुछ हो गया तो फिर मेरा क्य होगा? कौन देखेगा मुझे? वह युवक सहम गया। उसकी हिम्मत जवाब दे गयी। दुखनी को लगा - ''अब लोगों के भरोसे रहना वेवकूफी होगी। उसे ही कुछ करना होगा। क्या होगा! अधिक से अधिक उसकी जान ही जायेगी ना। बेटे के बिना अकेली जी कर भी क्या करेगी। बेटा बिना तो उनकी जिन्दगी ही बेकार।''

इससे आगे वह कुछ सोच नहीं पायी और वह हठात पानी में कूद गयी। पानी में कूदते ही अंदर तक जा पहुँची। वह होशो-हवास खो बैठी थी। फिर भी इतना ख्याल था कि पानी में उसका बेटा बहा जा रहा है और वह उसे ही निकालने के लिए पानी में कूदी है। फिर ना जाने कहाँ से उसमें स्फूर्ति आ गयी और वह जोरे से हाथ-पाँव चलाते आगे बढ़ने लगी थी।

तैरने का अभ्यास नहीं था, लेकिन वह जानती थी कि नदी में कैसे तैरा जाता है! सो वह जोर से हाथ पाँव चलाने लग गयी।

काफी देर की मशक्कत के बाद वह बेटे के करीब पहुँची थी। बेटा हाथ भर की दूरी पर बहा जा रहा था। मुँह से आवाज निकलनी बंद हो गयी थी। महज हाथ-पाँव हिलाकर अपने जिन्दा होने का एहसास दिला रहा था। दुखनी ने जब बेटे की यह हालत देखती तो उसकी चीख निकल गयी। कलेजा कट कर रह गया। वह बदहवास सी उस पर झपटी और एक ही झटके में उसे बाँहों में ली। तबतक वह काफी थक चुकी थी। हाथ-पाँव जवाब देने लगे थे। उसे लगा वह आगे तैर नहीं पायेगी। नहीं तैरने का मतलब...। वह समझ चुकी थी। लेकिन उपाय ही क्या था? मौत आँखों के सामने अट्टहास कर रही थी। अगर तुरंत कुछ नहीं किया तो मौत दोनों माँ-बेटे को अपने आगोश में ले लेगी। लेकिन वह बेटे को मरने नहीं देना चाहती थी। वह कुछ सोचने लग गयी, तभी उसे पानी के बीच एक छोटा सा पर्पट दिखाई दिया। उसने आव देखा न ताव, और पूरी शक्ति से बेटे को सूखे पर्पट पर उछाल दिया और खुद को छोड़ दिया गहरे पानी की प्रचंड धार में। कर दिया अपने आपको मौत के हवाले...।

❋❋❋

संभाव्य संदेश

धन

स्मरण रखें कि किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संग्रह की गई राशि ही 'धन' कहलाने की योग्यता रखती है। उद्देश्यविहीन संचय तो चाँद के प्रतिविम्ब को अंजुलि में भरने के लिए समुंदर में उतरने जैसा है।

इतिहास : सभ्यता की पीड़ा

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता,
भागलपुर, बिहार

इतिहास एक स्मृति है
एक लेखा-जोखा है,
अस्मिता की अनुभूति है
यह पूर्वजों की विरासत है,
संवाद का संदर्भ भी यही है।

इतिहास एक विश्लेषण है,
एक समीक्षा और विमर्श है;
पर्यपेक्षण और मूल्यांकन है
विजय और पराजय का संवाद है
सभ्यता और संस्कृति का दर्शन है।

पहचानना है हमें इसके विकास को
और जानना है इसके इतिहास को,
किसी अदृश्य काल-पुरूष की -
कलम से निकली अज्ञात लिपि में,
निरंतर कुछ लिखता और मिटता,
विस्मृति के गर्भ में समाता स्मृति शेष को।

कभी इतिहास एक सवाल छोड़ जाता है
क्या मुझसे कोई सबक ले पाता है?
सब वही भूल अविरल दुहराता है,
दमन, शोषण आक्रमण, अत्याचार,
संघर्ष और अन्याय कहाँ मिट पाता है

कभी दृष्टि की लीला स्पन्द करता है,
कभी श्रृंखलाबद्ध भूत-भविष्य बताता है।
नहीं लगता हमें, अपनी ढेर से यह
शब्दों का प्रपंच और विश्लेषण को
अपनी दक्षता का इतिहास जनाता है।

घटना-कब्र की घटित लाशों को
तर्क और शैली की दुहाई देकर
घुटन की उबटन लगाकर
सभ्यता, संस्कृति की याद दिलाकर
उलट-पुलट रख जाता दुहराकर।

❋❋❋

'हम, हमारी आधुनिकता और हमारे बुजुर्ग'

डॉ. सुनील कुमार परीट
बेलगाम, कर्नाटक
मो0 8867417505

Pearl S. Buck जी का कहना है, ***"Our Society must make it right and possible for old people not to fear the young or be deserted by them, for test of a civilization is the way that it cares for its helpless members."*** बुजुर्ग सामाजिक आपत्ति नहीं, बल्कि वे समाज के अनमोल धरोहर हैं। भारतीय सनातन धर्म के, सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था की नींव हैं। इसलिए हमारे देश में प्राचीन काल से ही बुजुर्गों का आदर-सम्मान करने की प्रथा एवं परम्परा प्रचलित में है, और यही तो हमारी उच्चकोटि की संस्कृति है। बुजुर्ग शब्द सुनते ही हमारे दिमाग में अधिक उम्र के साथ अनेक अनुभव प्राप्त किये हुए व्यक्ति की छवि सामने आती है। हम सही राह पर चलते हैं उसका मूल कारण है हमारे बुजुर्ग। हर कदम को हम स्वयं के बलबूतों पर नहीं चलते, अगर हमारे हर कदम सही नेक राह पर चलते है तो मान ही लेना चाहिए कि हमें हमारे बुजुर्गों के अनुभव का मार्गदर्शन प्राप्त है। जो राह में पत्थर से ठोकर खाता है उसके बाद पीछेवाला कोई भी ठोकर नहीं खाता, क्योंकि पहले जिसने ठोकर खाया है वही तो हमारे बुजुर्ग हैं। इस तरह हमें सही राह पर चलाने वाले बुजुर्गों के साथ क्या आज हम उनके साथ सही व्यवहार से बर्ताव करते हैं। इस प्रश्न का उत्तर तो आमतौर पर नकारात्मक ही होगा।

अनेक बार कठिन मोड़ आने पर या कठिन समय में हमारे बुजुर्गों के सही निर्देशानुसार हम सुरक्षित पार हो जाते हैं। घर-परिवार में दादा-दादी, नाना-नानी, माता-पिता और सास-ससुर होते हैं, समाज में उम्र में बड़े या गुरुजन होते हैं, यही लोग तो हमारे बुजुर्ग हैं। इनके अनुभवों के सहारे हम जीते हैं, जिनके मार्गदर्शन से हम अपने जीवन को निहारते हैं वही तो हमारे बुजुर्ग हैं। आज इस भागदौड़ की दुनिया में घर के पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं, तब बुजुर्ग ही घर में रहकर बच्चों की देखभाल करते हैं। बुजुर्ग बच्चों में अच्छे संस्कार एवं संस्कृति भरते हैं। बुजुर्गों की छत्रछाया से बच्चे नैतिक मूल्य और अच्छी सभ्यता को आत्मसात कर लेते हैं। बुजुर्गों के राह में कदम पर कदम रखते आगे बढ़ेंगे तो सागर रूपी जीवन को सुखमय बनायेंगे। बालगंगाधर तिलक जी का कहना है - ''तुम्हें कब-क्या करना है यह बताना बुद्धि का काम है, पर कैसे करना है यह अनुभव ही बता सकता है।''

मध्यप्रदेश के एक सामाजिक न्याय मंत्री ने कहा था कि जिन घरों और परिवारों में बुजुर्ग माता-पिता की ठीक ढंग से देखभाल अथवा संरक्षण नहीं हो रहा है उनके विरूद्ध 'माता-पिता भरण-पोषण अधिनियम' के तहत सख्त कार्यवाही की जाएगी। इस अधिनियम के तहत दस हजार रुपये का जुर्माना एवं तीन माह की कैद जारी किया गया है। इस तरह के कानून देश के अनेक इलाकों में जारी हैं। फिर भी हर दिन भीख माँगते हुए अनेक बुजुर्ग फूटपाथों पर दिखाई देते हैं, पत्रिकाओं में पढ़ते हैं अनेक बुजुर्ग तंग आकर आत्महत्या कर ले रहे हैं। क्या इस तरह के कानून या अधिनियम बनाने से बुजुर्गों की रक्षा या भरण-पोषण हो रहा है। सवाल कानून का नहीं है, संबंध का है। विपर्यास है कि खून के रिश्ते संभालने के लिए कानून आ रहे हैं, और इससे बड़ी दुख की बात कौन सी हो सकती है।

आज की आधुनिकता और बाजारवाद के दौर में बुजुर्गों के प्रति सब में अलगाव की भावना पैदा हुई है। कहीं-कहीं परिवार में, समाज में बुजुर्गों का अपमान हो रहा है, उन्हें कोई मान-सम्मान नहीं मिलता। आजकल की युवा पीढ़ी उन्हें अपने आप को जीने

तक नहीं देती। इसके अनेक कारण हो सकते हैं - बिखरते संयुक्त परिवार, पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, वैज्ञानिक-तकनीकी प्रगति, संपर्क माध्यमों के दुष्प्रभाव। अनेक घरों में पशु के समान बुजुर्गों को अलग कमरे में बंद कर रखा गया है। संयुक्त परिवार की जगह आजकल एकल परिवार जन्म ले रही हैं। ऐसे संदर्भ में कहते हैं - 'नीम का पौधा लगाकर आम की अपेक्षा करना।' आज चारों ओर एक स्वर गूँज रहा है कि सामाजिक, धार्मिक, नैतिक मूल्य गिर रहे हैं। जब घरों-परिवारों में बुजुर्ग ही नहीं हैं तो बच्चों में नैतिक मूल्य कहाँ से पैदा होंगे। जिन्होंने हमारी उँगली पकड़कर हमें चलना सिखाया, आज उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय होती जा रही है। आज के लोग आधुनिकता की थपेड़ में वैसी स्थिति निर्माण कर रहे हैं। जो खून-पसीना बहाकर चार-पाँच बच्चों का पेट भरकर इतना बड़ा करते हैं, वही बच्चे माता-पिता या बुजुर्गों के भरण-पोषण के संबंध में उन्हें बाँट दिया करते हैं। इसलिए आज वृद्धाश्रम खुलते जा रहे हैं। जिन्होंने जहाँ पर अपना घर परिवार बसाया था, अपने बच्चों के लिए वे सबकुछ समर्पण कर दिया था, आज अनेक दुख-परेशानी के बीच भी चुप रह जाते हैं।

अब हमें इन वीडिओ गेम, फेसबुक, ई-मेल से हटकर हमारे वजूद हमारे बुजुर्गों के बारे में सोचना ही चाहिए नहीं तो बहुत देर हो जाएगी।

हमें मानना है -

''बुजुर्ग हमारे बोझ नहीं
बुजुर्ग हमारे सुकून है।
जीवन हमारा संवारते हैं
पहले वे राह में निपुण हैं।''

लघु कथा

तीसरी पीढ़ी

डॉ. अनुज प्रभात
फारबिसगंज, अररिया, बिहार
मो0 9470023249

''सुना तुमने, जुगेसर की माँ मर गई... फिर आयेगा रूपया माँगने अब तक तो बीसों बार ले गया... लौटाया एक बार भी नहीं। लिख कर रखा भी है या नहीं... कितने रुपये हुए?'' वर्मा जी की धर्मपत्नी क्रोध से तमतमाते स्वर में बोली।

सच भी था जुगेसर को जब कहीं से कोई जुगार नहीं होता तब वर्मा जी के पास चला आता। कभी बच्चे की बीमारी को लेकर... तो कभी पत्नी के... तो कभी अपने को खाँसता हुआ दिखाकर।

हर बार वर्मा जी उसे कुछ न कुछ दे देते और एक पहर तक पत्नी का क्रोध झेलते। इसलिए आज उनकी धर्मपत्नी जी को जैसे पता लगा कि जुगेसर की माँ मर गई है, पहले से ही सतर्क करने लगी। फिर उसने एक हिदायत भी दे डाली-''उछलकर वहाँ मत चले जाना तुम्हारी तो आदत है... कहीं कुछ हुआ दौड़ गए... चुपचाप घर में रहो... जब कोई आएगा तब, देखा जायेगा।''

अभी उनकी बातें खत्म भी नहीं हुई थी कि जुगेसर का बेटा मानव आ गया। बोला - ''चाचा जी, दादी गुजर गई है पिताजी नहीं आयेंगे। मुझे पता है... बार-बार कर्ज लेकर उन्होंने चुकता नहीं किया। लेकिन मैं दादी की तीसरी पीढ़ी हूँ। तीन पीढ़ी की ऋण का बोझ चौथी पीढ़ी पर नहीं डालूँगा। दादी ने एक बार कहा था - ''दादा की जान आपके पिताजी ने बचाई थी।''

वर्मा जी अवाक थे उस बालक पर कि वह सब जान रहा था। अभी वे कुछ सोच ही रहे थे कि धर्मपत्नी जी ने कुछ रुपये लाकर उस बच्चे के हाथ में दे दिया और कहा - ''चिन्ता मत करो जो भी दिक्कत हो बोलना। बेटा हम तुम्हारें साथ हैं।''

वर्मा जी ने देखा उसकी आँखों में आँसू हैं। शायद नारी के कोमल हृदय ने तीसरी पीढ़ी को समझ लिया था।

❋❋❋

तीन कविताएँ

ई. दीप्ति शर्मा
आगरा, उत्तर प्रदेश

✣ पोटली ✣

इस समतल पर पाँव रख
वो चल दी है आकाश की ओर
हवाओं की झूला और
घाम का संचय कर
शाम के बादलों से निमित्त रास्ते से
अपने गूंगेपन के साथ
वो टहनियों में बांधकर
आंसूओं की पोटली ले जा रही है
टटोलकर कुछ बादलों को
वो सौंप देगी ये पोटली
फिर चली आयेगी उसी राह से
फड़फड़ाती आंखों की चमक के साथ
इसी उम्मीद में कि अब इन शहरों में
बारिसों का शोर सुनाई नहीं देगा
लोग उत्साहित होंगें पानी के सम्वाद से
क्योंकि भरे हैं अब भी
दुख उसी पोटली में
जो बादलों ने सम्भाल रखी है

✣ धूरी ✣

कब तक बदहवास में
चलती रहोगी
एक ही धूरी से
एक ही रेखा पर
धागे भी टूट जाते हैं
सीधा खींचते रहने पर

अंधेरा नहीं है
तो पैर नहीं डगमगायेंगे
पर ये धूरी बदल रही है
सीधी न होकर गोल हो गयी है
तुम्हारी चाल के अनुरूप
उसी दिशा में प्रत्यक्ष
तुम्हारी धूरी पर
बस मैं ही खड़ा हूँ

✣ खुरचे हुए शब्द ✣

खुरचे हुए शब्द
नाखूनों से, दांतों से
और निगाहों से
बेजान हैं जान नहीं बची
वो अंडे भी तो टूट चुके हें
उस घोंसले में बेवक्त
और ढो रहा है भार
वो घोंसला
उन टूट अंडों का
और तब से अब तक उसमें
कोई नया अंडा नहीं जन्मा
कहीं खुरच तो नहीं गया ?
वो घोंसला भी
शब्दों की तरह
ये शब्द तो पढ़े नहीं जाते
और उस घोंसले में भी तो
कोई रहने नहीं आता
कि कहीं खुरच के
बेवक्त कोई और
अंडा फूट ना जाये।

❋❋❋

समर्पण

छाया पाण्डेय
भागलपुर, बिहार

अव्यक्त हृदय की अभिलाषा
अवचेतन मन की जिज्ञासा
तुम आओगे ये अकुलाहट
दिला रही झूठी दिलासा।
हृदयवीणा के अक्षुण्ण तार
झंकृत हो उठे हैं एकबार
तेरी मीठी यादों का
सरगम बजा है बार-बार।
स्पर्शविहीन ये अनुभूति
क्यूं जगा रही अपरीमित प्रीति
शांत भंवर उद्विग्न हुआ
सारा जग इसमें विलीन हुआ।
तुममें विलय का आकर्षण
है कितना प्यारा सम्मोहन
संतृप्त प्रेम का आमंत्रण
चाहता है संपूर्ण समर्पण।।

❋❋❋

समर्पण

सुमित्रा पारीक
अजमेर, राजस्थान
मो0 9829031725

बर्फ की तरह जमी !!!
संवेदनाएं...
भावनाएं की उष्मा पा कर
पिघलती है...झरने लगती...
बहने लगती है...
नीचे की ओर...
छोड़ कर अपनी ऊंचाई
अहम् को...
मीठेपन का भाव
लिए...
बहने लगती है
धार बनकर !!!!
जहाँ-जहाँ पहुँचती...
अपने माधुर्य
अपनी शीतलता से
तृप्त करती सब को
पर !!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!!
समुंद्र के खारेपन को
वो आज तक न
मिटा पाई
प्रति पल दे कर
अपना मीठा पानी
अन्त में उसने ही
समुंद्र को आत्मसात किया
बन गई खारा जल ! .....

❋❋❋

समीक्षा

'डंडीर' एवं 'अरे जाने दो' (कहानी संग्रह)

दयानन्द जायसवाल
संस्थापक, संभाव्य

सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। विश्व मानव की कल्पना और मानसिकता का स्रोत सभ्यताओं के इतिहास में और संस्कृतियों के विकास में है। साहित्य सृजन का संसार भाषाओं पर निर्भर करता है और यह भाषाओं के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़कर सार्थकता की संपन्नता पाता है, किन्तु उसमें जो श्रेष्ठ है, वैश्विक है, व्यापक और सार्वजनीन है उसे अवश्य ही विश्व साहित्य का अंग माना जा सकता है।

कथावस्तुओं के विन्यास के साथ ही पन्नों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में सिद्धहस्त श्री पी.एन.जायसवाल की रचना कहानी-संग्रह ''डंडीर'' और ''अरे जाने दो'' को मैंने देखा तो पाया सचमुच ही इनकी कृतियों के पीछे एक अत्यंत गंभीर, चिन्तनशील और सजग-बुद्धि कलाकार छिपा है जो जीवन का न केवल सूक्ष्मता से निरीक्षण करता है बल्कि उतनी ही सूक्ष्मता से विवेचन भी करता है। इन्होंने अपनी कहानियों में जिन सामाजिक बुराइयों, अनैतिकताओं, अशिक्षा, अन्धविश्वास, आर्थिक विषमताओं, आत्मिक और भौतिक स्तर पर शोषण आदि की समस्याओं को उठाया है, वे अगर हमारे समाज में आज भी वैसी ही बनी हुई हैं तो यह हमारे लिए एक शर्म की बात है। इनकी कहानियों के साहित्यिक विचारों और रचनाओं को पढ़ते समय लगता है कि ये सामाजिक समस्याओं को लेकर एक खास तरह का सरलीकरण प्रस्तुत किया है। इनके पात्र और परिस्थितियाँ सपाट हैं तथा उनकी समस्याएँ मूलतः आर्थिक - सामाजिक और शैक्षिक हैं। इनके चरित्र अधिकतर देहाती, कृषिजीवी समाज के अथवा कस्बाई निम्नभद्र वर्ग के हैं, कोई विशिष्ट चरित्र नहीं हैं पर अपवाद रूप भी नहीं है। कोई भी साहित्यिक रचना आज की परिस्थिति मात्र के सभी प्रश्नों का सही उत्तर देकर अथवा देने के कारण प्रासंगिक नहीं होती, बल्कि एक सर्वथा भिन्न परिप्रेक्ष्य से हमारी आज की नियति को आलोकित करने के कारण, हमें नये सिरे से सोचने के लिए मजबूर करने के कारण और हमारी आत्मतुष्टि को तोड़ने के कारण प्रासंगिक होती है। वर्तमान के गहरे बोध के माध्यम से ही अतीत की भी ऐतिहासिक चेतना सहज प्राप्त होती है। इस कारण इनकी कहानियों के आधार पर हम कह सकते हैं जो अपने युग के बोध से रिक्त हैं वह किसी दूसरे युग को जानने में कैसे समर्थ हो सकते है।

इनकी रचनाओं से यह प्रतीत होता है कि ये देश की संस्कृति के उपासक हैं और उसका परिष्कार कर उसे आगे विकसित करना चाहते हैं। इनकी रचनाओं में कहीं मनुष्य का अपने को समझना उसके भौतिक विकास के साथ जुड़ा हुआ है तो कहीं विचार प्रधान रचना मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्षरत दिखता है। इनको एक तरफ सामन्ती पूंजीवाद विचारधारा खींचती है तो दूसरी तरफ सहृदयता, उसका सामाजिक ज्ञान और साहित्य के माध्यम से समाज को बदलने की तरफ खींचता है। प्रेम, सेवा, स्वार्थ, त्याग, अपरिग्रह और सहनशीलता को ये मानवीय प्रकृति का अनिवार्य अंग मानते हैं। इनका यह विश्वास है कि गाँव और सीधे-सीधे किसानों में ये गुण अधिक सुलभता और प्रचूरता से मिलते हैं। इनके पात्रों में इस कल्पना की झलक साफ-साफ देखी जा सकती है। इनके विचारों का प्रेरणा स्रोत वे उत्पीड़ित और दुःखी इन्सान हैं जिन्हें एक ओर कठोर परिश्रम तथा दूसरी ओर अत्याचार और अभावों की चक्की

में पीसते हुए इन्होंने अपने आस-पास देखा है।

प्राकृतिक दृश्य के वर्णन से वातावरण तैयार करने या मनोभाव प्रकट करने के तरीके का प्रयोग इनकी कहानियों में काफी सफल है तथा कला, विषय वस्तु, रचना - शिल्प सामने के सामाजिक जीवन के उपकरणों से निर्मित है। ये अपनी रचना के पात्रों को अलग से प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि पूरे सामाजिक परिवेश के साथ उन्हें प्रस्तुत करते हैं। सामान्य ढाँचा, सामने के जीवन को सहज सामाजिक संबंधों के साथ प्रस्तुति, कहानी की रचना - सामग्री को प्रायः सभी प्रमुख अन्तरसंबंधों के साथ नियोजित करने की कला इनके रचना-शिल्प की बहुत बड़ी खूबी है।

व्यापक सामाजिक जीवन के कथाकार श्री पी0 एन0 जायसवाल अपनी कहानियों के माध्यम से बिम्बित करते हुए गाँव के जीवन के सबसे नीचले सिरे पर स्थित भूमिहीन किसान तथा खेतिहर मजदूर से लेकर भूमिपति, जमींदार एवं शासकीय संवर्ग के लोगों का चित्रण खींचते दिखाई देते हैं। कहानी ''जोखिम'' में सामन्ती व्यवस्था की रूढ़ियों, परम्पराओं और प्रथाओं का शिकार 'झुनिया' एवं आधुनिक सभ्यता के प्रभावों से घिरे 'नीम पर भूत' कहानी का 'विरेन' सभी इनमें दिखाई देते हैं। कभी-कभी तो ऐसा देखने को मिलता है कि ये पात्रों के अड़ोस-पड़ोस से भी परिचित हैं। इनके दोस्तों और दुश्मनों से भी वाकिफ हैं। सिर्फ इन्हें ही नहीं बल्कि पूरे पारिवारिक जीवन को, आसपास के संबंधों को तथा इनके तमाम सामाजिक अन्तर्विरोधों को भी पहचानते हैं। इनकी कहानी 'शून्य शून्य शून्य'' में सामाजिक जीवन के जिस व्यापक परिवेश को, उसके अनेक संबंध सूत्रों को, उसके बीच अर्न्तसंबंध के क्षेत्रों को, विभिन्न जाति और धर्म के लोगों को सामाजिक जीवन में एक दूसरे के सुख-दुख में शरीक होते, अन्तर्विरोधों का मुकाबला करते जो दिखाया गया है वो कहीं भी अधिक तीव्र और आवेश मूलक नहीं है, बल्कि बहुत ही सहजता के साथ महज कुछ प्रसंगों के सहारे साहित्यिक उद्देश्य को दर्शाया है।

इनकी कहानियों की लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा कारण है कि देश में जहाँ आज भी बहुत सारे लोग अशिक्षित हैं, अक्षरों की दुनिया से बाहर हैं वहाँ अभी भी पाठ्य के अलावे श्रव्य रूप का काफी महत्व है, जो इनकी कहानियों की शैली प्रस्तुत करती है। किसी कथाकार के व्यक्तित्व अथवा उसके मानसिक संघर्ष, कलुष अथवा स्वच्छता का सबसे अच्छा प्रमाण उसकी रचना ही होती है इनकी रचनाओं में तो स्वाधीनता की कामना, संघर्ष चेतना और परिवर्तन के गहरे बोध का अहसास होता है, दलित, वंचित और शोषित के प्रति भावनात्मक उद्वेलन उत्पन्न करने के साथ ऐसी गहरी विचार दृष्टि भी मिलती है जिससे हम उन अमानवीय वास्तविकताओं के कारणों को अपने अतीत और वर्तमान की विभिन्न सामाजिक और आर्थिक मान्यताओं को पहचान सकें।

इनके लेखन में यथार्थ एवं आदर्शवादी चित्रण हैं। कथोपकथन के भाषा की सामान्यतया या पात्रनुरूपता, पात्रों की विनोदात्मक बातचीत आदि शैली संबंधी विशेषताएँ यथार्थ को छूती हुई परिलक्षित होती है एवं मानव की सद्वृत्तियों पर विश्वास, चरित्र निर्माण और मनोवैज्ञानिक आदर्शवाद पर आधारित प्रतीत होती है। खासकर ये जीवन के सम्पूर्ण स्वरूप को दृष्टिपथ पर लाना चाहते हैं। अतएव इनमें ग्राम्य के साथ-साथ नगरों और उनके निवासियों की दिनचर्या भी आयी है। ग्राम्य जीवन को नागरिक जीवन से नितान्त पृथक रखा भी नहीं जा सकता क्योंकि आज की स्थिति में वे दोनों एक दूसरे से एकदम अलग नहीं हैं। समाज की अनिष्टकारी शक्तियों के विरूद्ध इनकी कहानियों में एक कठोर व्यंग्य का भाव भी भरा है।

विशेषकर हम इनके कथा - साहित्य पढ़कर एक उदार और उदात्त नैतिकता की तलाश करने लगते हैं और आत्म - केन्द्रिकता के दुर्ग को तोड़कर एक अच्छा मानव बनने में लग जाते हैं।

❋❋❋

शिवाला गया है

डॉ. कमलेश द्विवेदी
कानपुर, उत्तर प्रदेश
मो0 9415474674

उसे सिर्फ कह-कह के टाला गया है।
कहाँ उसके मुंह में निवाला गया है।।
न हारा न जीता वो अब तक किसी से।
उसे सिक्के जैसा उछाला गया है।।
जिया तो न चादर मिली पर मरा तो।
उसी को ओढ़ाया दुशाला गया है।।
जिसे माँ ने छोड़ा सड़क पर अकेला।
यतीमों के द्वारा वो पाला गया है।।
जो कहते थे - हम रोशनी ला रहे है।
उन्हीं के घरों कुल उजाला गया है।।
जिन्होंने बनाया - बसाया था घर को।
उन्हें आज घर से निकाला गया है।।
मुहब्बत का पर्चा बहुत ही है मुश्किल।
वफ़ा का ही पहला सवाल आ गया है।।
पिता को खुशी माँ को चिंता बहुत है।
वो पहली दफा पाठशाला गया है।।
सफाई कई बार घर की हुई पर।
न मकड़ी गई वो न जाला गया है।।
पुराणों ने जिसको अगोचर बताया।
उसे मूर्ति में कैसे ढाला गया है।।
किया काम जिसने है कोई अनोखा।
दिया बस उसी का हवाला गया है।।
खुदा को न पाया न ईश्वर को पाया।
वो मस्जिद गया है, शिवाला गया है।।

❋❋❋

ग़ज़ल : एक पाकीज़ अल्फाज़

डॉ.जी.पी.सिंह
संपादक, संभाव्य

'ग़ज़ल' इस खूबसूरत क़ायनात की एक पाकीज़ अल्फाज़ हैं। रूहानी अहसास और इंसानी मुहब्बत में यकीन करनेवाले कई जाँनिसारों ने इसे अल्लाह के नाम से नवाज़ा।

एक तरफ जहाँ अरबी शब्दकोश में 'खूबसूरत दिलरूबा से गुफ़्तगू करने' को ग़ज़ल का नाम दिया गया तो दूसरी तरफ फ़ारसी शब्दकोश में 'तबस्सुमी आँख' को ग़ज़ल कहा गया।

उर्दू शब्दकोश में ग़ज़ल का दायरा बढ़ गया और कई सल्तनत के हुक्मरानों ने अपनी-अपनी दिलरूबा की धड़कन में धड़कने के लिए ग़ज़ल को पयाम-ए-मुहब्बत का अंदाज़ बनाया।

बेशक, मुहब्बत दुनियाँ की सबसे बड़ी आजमाईश है। इसे खुदा की इनायत का दर्जा हासिल है। चुनांचे गजल कुरान-ए-शरीफ़ की आयतें भी हैं, वेद की ऋचाएँ भी। ग़ज़ल ज़िस्म भी है, रूह भी। ग़ज़ल तहज़ीब है, आबरू है, पाकीज़ मुहब्बत का अफसाना भी।

ग़ज़ल की दुनियाँ का सबसे खूबसूरत नाम है - अमीर खुसरो।

खुसरो साहब ग़ज़ल की दुनियाँ की ऐसी शख्सियत हैं जिन्होंने दुनियाँ को पहली बार ग़ज़ल से रू-ब-रू कराया -

"पिया बाज़ प्याला पीया जाये ना
पिया बिन एक तिल जिया जाये ना
कते थे पिया बिन सबुरी करूँ
कहिया जाये लेकिन किया जाये ना"

- अमीर खुसरो

हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल गढ़ने की शुरूआत छायावाद युग के चार स्तम्भों में से एक व हिन्दी साहित्य के 'महाप्राण' से शोहरत पाए सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के नाम है जिन्होंने इसे एक छन्द के रूप में स्वीकार किया।

बाद के दिनों में कई नामचीन शायरों ने ग़ज़ल के दायरे को बढ़ाकर उसमें सामाजिक चित्रण का समावेश किया। हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल गूँथने का सेहरा दुष्यंत कुमार के नाम है।

मनोवैज्ञानिक लेख

शिक्षण में प्रेरणा का महत्व

प्रीति कुमारी
फोनिक्स, एरिजोना, अमेरिका
फोन नं. : 602-288-8880

मानव शिक्षण में प्रेरणा का महत्व मनोवैज्ञानिकों, शिक्षा शास्त्रियों आदि के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है, मनुष्य को सीखने की क्रिया को प्रभावित करने वाले अध्ययन शिक्षण प्रक्रिया को सबल करता है। सीखना या शिक्षण को प्रभावित करनेवाले कारक व्यक्ति में ही मौजूद रहते हैं जिसे हम व्यक्तित्व कारक कहते हैं। सीखने की क्रिया पर बुद्धि का गहरा प्रभाव पड़ता है। बौद्धिक योग्यता तथा सीखने की क्षमता के बीच घनात्मक संबंध है, किन्तु एक निश्चित सीमा के बाद किसी चीज के सीखने पर बुद्धि का प्रभाव गौण हो जाता है। सीखने की योग्यता पर आयु के कारण परिपक्वता का प्रभाव अत्यधिक पड़ता है, इससे अधिक सीखने पर सीखनेवाले की प्रेरणा, इच्छा शक्ति, प्रासंगिक प्रभाव अधिक उपयोगी होता है। शिक्षण का यह कारण (प्रेरणा) अन्य कारकों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। किसी विषय को सीखने की कुशलता उसके विविध-सामग्री पर निर्भर करता है। जिन पदों एवं शब्दों का उच्चारण आसान होता है, व्यक्ति उसे जल्दी सीख लेता है।

प्रगति की प्रक्रिया को शिक्षण कहते हैं लेकिन यह प्रगति वास्तव में सीखने की इच्छा या उद्देश्य होने पर वह व्यवस्थित ढंग से अपेक्षित लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत होता है। अतएव साधनात्मक शिक्षण वास्तव में अभिप्रेरित होता है। प्रेरणात्मक शिक्षण प्रेरणा प्रेरक व्यक्ति या अन्य प्राणी की क्रिया का संचार सीखने के लिए सक्रिय करता है, प्राणी या व्यक्ति द्वारा सीखे जाने वाले विषय अथवा निष्पादित की जाने वाली क्रिया के चयन में प्रेरक सहायक होता है। प्रेरक की प्रेरणा इसी चयनात्मक कार्य का परिणाम होता है। प्रेरणा व्यक्ति या प्राणी को एक विशेष दिशा में सीखने या क्रिया के लिए वाह्य करती है। भूखा व्यक्ति कुछ ऐसी वस्तु की दिशा में सक्रिय हो जाता है जो उसकी भूख को संतुष्ट कर सके। प्रेरणा जितना ही अधिक प्रबल होती है अथवा प्रोत्साहन जितना ही अधिक मूल्यवान होता है, सीखने की रफ्तार एवं कुशलता उतनी ही अधिक होती है। गेट्स ने कहा है ''प्रेरकों के चयनात्मक कार्य से सम्बन्ध उनकी भूमिका व्यवहार - निर्देशन में है।''

मानव शिक्षण में प्रेरणा के महत्व को विभिन्न प्रकार से देखे जाते हैं, समस्या के समाधान में प्रेरक - प्रोत्साहन के रूप में सहायक होता है, पुरस्कार के रूप में यदि प्रेरणा आती है तो भौतिक पुरस्कार अधिक प्रभावशाली होता है, अधिक उम्र के बालकों या वयस्कों की शिक्षण की कुशलता को बढ़ाने में भौतिक पुरस्कार की अपेक्षा मौखिक प्रेरक पुरस्कार अधिक लाभप्रद होता है, जीवन में यदि प्रेरक बनकर कुछ सामने प्रेरणा के रूप में नहीं आती है तो विफलता उत्पन्न होने की संभावना रहती है जिससे व्यक्ति हतोत्साहित हो जाता है, सीखने की रूची घट जाती है, तथा सीखने के प्रति उदासीनता, प्रतिकूल मनोवृत्ति तथा प्रतिरोध विकसित होते है। यह अभियोजन में वृद्धि न कर असफलता की स्थिति उत्पन्न होती है, यदि कोई बालक/बालिका अपने पिता से किसी भी प्रकार का प्रोत्सोहन, प्रेरणा या पुरस्कार प्राप्त करता है तो उसे अपनी क्रिया में अभिरूचि आने लगती है, उसे संतुष्टि मिलती है, आन्तिरक खुशी मिलती है जिससे उसके कार्य सकारात्मक सिद्ध होते हैं, उसमें एक विशेष मनोवृति का निर्माण हो जाता है कि मुझे इस क्रिया करने या विषय सीखने में आन्तिरक एवं वाह्य लाभ हो रहा है, मानव शिक्षण में प्रेरणा ज्ञान में महत्व को बढ़ाने की संभावना बन जाती है, मनोवैज्ञानिक के अनुसार मानव शिक्षण में प्रेरणा एक अनुकूल वातावरण लेकर सामने आती है जो एक प्रभावकारी स्त्रोत विद्युत तंरगों की तरह मानव मस्तिष्क को उद्देलित कर देती है और ऊँचाई की उड़ान पर कार्य सम्पादक में अथवा निष्पादन में अद्वितीय प्रेरक सिद्ध होती है। महापुरूष किसी न किसी प्रेरणा या प्रेरक तत्व में प्रभाव से प्रतिकलित हुआ है। ऐसे बहुत सारे उदाहरण हमें देखने को मिलते है, प्रेरक सामग्री जितनी ही अधिक प्रभावकारी होती है सीखने कल्पना और कार्यन्वयन की रफ्तार। उतनी ही तेज होती है।

प्रगति वास्तव में सीखने की इच्छा या उद्देश्य पर निर्भर करती है। आकिस्मक शिक्षण अर्थात ऐसा शिक्षण जिसमें पीछे कोई इच्छा या उद्देश्य न हो और न प्रेरक का कोई रूप हो, विश्वसनीय नहीं होता। ऐसी स्थिति में व्यक्ति कुछ सीखता और कुछ नहीं भी सीख पाता है। यदि सही प्रेरक या उद्देश्य मिल जाये तो वह व्यवस्थित ढंग से किसी अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। अतः सहयोगात्मक शिक्षण में प्रेरणात्मक क्रिया वास्तव में अभिप्रेरित होता है। इसी कारण प्रेरणा का शिक्षण की आवश्यक शर्त माना जाता है।

❋❋❋

शोक

डॉ. मनाजिर आशिक़ हरगानवी
प्रोफेसर, स्नातकोत्तर उर्दू विभाग
ति.मां.भा.वि., भागलपुर, बिहार

दूर तक लम्बी - चौड़ी सड़क पर
सफेद धुले स्कूल का ड्रेस पहने
बच्चों की लाशों से
खून बह रहा है
और उस खून में डूबे
भारी-भारी जूतों के
निशान सड़क पर
एक कतार में छपे हुए हैं
वहां तक जहां पहुँचकर
वह गांव जल रहा है।

❋❋❋

मर रही है मानवता !

उमाशंकर बालोदिया 'उदय'
सूरतगढ़, श्रीगंगा सागर, राजस्थान

आहत है मन-तन मेरा और विचलित हूँ 'उदय'
क्या मर रही है मानवता या अंधकार है छाया

दुनिया में कैसी बर्बरता है, क्या भूमिका यं संग्राम की है,
हर रिश्ते नाते तार हुए, और पंचशील बेकार हुए

मानवता पे इतने वार हुए, अब चलते फिरते हथियार हुए
अब लूट रहा जब मानव है, प्रकृति भी निढाल हुई,

मानव कितना हैवान बना, बस लूट का नाम इंसान बना
ये सोच के रोती हे ये धरा यहां की, मेरी बगिया का क्या हाल हुआ

आँखों में आँसू आते हैं और मन द्रवित हो जाता है
कभी होगी भोर फिर से 'उदय', यह तो अब इक सपना है...

❋❋❋

कविता

प्रदूषित इंसानियत

अभिलेख द्विवेदी
मो0 889-787-1489

प्रदूषित हो रहा पर्यावरण
इंसानियत को कुदरत से कैसी ये रंजिश है...!
बेहताशा पेड़ों को काट कर
अब बसती नयी ज़िन्दगी है...!
इस्पाती रसायनों की बाढ़ में
पानी को तरसती ज़िन्दगी है...!
गतिशील उन्नति की राह पर
बिमारियों में लिपटी ज़िन्दगी है...!
रफ्तार की पकड़ में
सड़क पे भागती ज़िन्दगी है...!
मतलबपरस्ती की झुण्ड में
उलझी रिश्तों की ज़िन्दगी है...!
किसे दोष दें इस प्रदूषण के लिए
क्या करें इसे दूर करने के लिए...?
क्यूँ इंसान अपना अस्तित्व खुद ही मिटा रहा
आज के लिए अपना कल क्यूँ बिगाड़ रहा...?
आओ धरती पर भी एक नया स्वर्ग बनाएं
धूमिल होती इंसानियत को फौरन बचाएँ...!!

लोकवाणी

संभाव्य में विचारों का दोहराव नहीं है

अभिनव अरूण
वरिष्ठ उद्घोषक
आकाशवाणी, वाराणसी

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध त्रैमासिक 'संभाव्य' का जुलाई 2013 अंक प्राप्त हुआ। यह विचारों का दोहराव नहीं बल्कि इस विश्वस्तरीय प्रकाशन के तेवर का प्रभाव है यदि कहूँ कि ''संभाव्य'' भीड़ में अपनी अगल पहचान रखने वाली, और निष्पक्ष साहित्यिक सरोकारों की पत्रिका है तो अतिशयोक्ति नहीं। पिछले दो अंकों को देखते - पढ़ते हुए एक और बात नोट की मैंने कि देश की स्थापित और कथित तौर पर प्रख्यात पत्रिकाओं में जो रचनाकार प्रकाशित होते हैं सिर्फ वहीं गिने चुने लोग कलम के सिपाही नहीं हैं, बल्कि हिंदी सेवा आज देश के हर हिस्से में देशकाल समाज के सापेक्ष सशक्त रूप से अपनी कलम चला रहे हैं।

'संभाव्य' उन ब्रांडेड लेखकों की मोहताज नहीं। ये स्थिति साहसिक संपादन - प्रबंधन का द्योतक है। मुक्तिबोध ने जिस मठ और गढ़ को तोड़ने की बात की थी वह हर क्षेत्र में है। संभाव्य ने बिना किसी वाद-प्रतिवाद के सिर्फ कालजयी हस्तक्षेप करती, बदलाव की अलख जगाती रचनाओं को न्योता और स्थान दिया है। मैंने स्वयं कई साहित्यिक मित्रों को 'संभाव्य' को पढ़ने और उसमें रचनायें देने को प्रेरित किया है। मेरा यह प्रयास जारी रहेगा। 'संभाव्य' से जुड़े रचनाकारों ने अपनी लेखनी से 'सभाव्य' को ऊंचाई दी है। 'संभाव्य-संदेश' और 'आमंत्रण' उन संपादकों के लिए आँखें खोलने के लिए पर्याप्त अवसर देता है जो नवोदित रचनाकारों को अपनी पत्रिकाओं में स्थान देने से गुरेज करते हैं या शिष्टतावश ''रचनाओं की भीड़ का बहाना'' बनाते हैं और सार्थक संदेशों से ऊपर व्यावसायिक हितों को तरजीह देते हैं।

संस्थापक की कलम से और सम्पादकीय में समकालीन परिप्रेक्ष्य तथा पत्रकारिता के वर्तमान पर सटीक टिप्पणी की गयी है, इस हेतु साधुवाद। सभी आलेख, प्रसंग, कवितायें, कहानियाँ गागर में सागर की उक्ति को चरितार्थ करती प्रतीत होती हैं। रचनाओं के संयोजन में तारतम्य और निरंतरता दिखती है जो कुशल संपादन का प्रतीक है। इस साहित्य-सागर की कुछ सकारात्मक पहल करनेवाली लहरों का उल्लेख करूँ तो डॉ अमरेन्द्र का आलेख 'अंग प्रदेश का हिंदी साहित्य', संयुक्ता गुप्ता का लेख 'वैश्वीकरण के दौर में नारी' और रहीम मियाँ की पड़ताल 'भूमंडलीकरण और साहित्य' बेहद विचारपरक और ज्ञानवर्धक हैं। स्व. द्विजेन्द्र जी की कविताओं सशक्त सारगर्भित कविताओं से परिचय कराने के लिए आपको साधुवाद और रचना के प्रति नमन वंदन ! यही काव्य का मानवीय पक्ष है जो शाश्वत है। अशोक मिज़ाज, राज हिरामन, डॉ. अलका अग्रवाल, दीप्ति शर्मा व डॉ. चंद्रेश की कविताओं ने मन मोह लिया। सभी रचनाकार बधाई के पात्र हैं। पी. एन. जायसवाल की कहानी 'शून्य...शून्य...शून्य' और डॉ मीरा झा की कहानी 'दादी आई थी' मन तारों को झंकृत कर गयी। संवेदनाओं की गहरी पकड़ और उसकी अभिव्यक्ति के क्या कहने, बहुत बधाई इन रचनाकारों को। प्रतिक्रिया को लोकवाणी स्तम्भ मिला है, बहुत अच्छा लगा। पाठक की राय भी किसी प्रकाशन के परिमार्जन में बहुमूल्य भूमिका निभाती है।

वस्तुतः मानवीय मूल्यों के प्रचार-प्रसार और विसंगतियों पर प्रहार की अपनी महती भूमिका का जिम्मेदारी से निर्वहन करती हुई दिख रही है ''संभाव्य''। बहुत बहुत आभार सहित पत्रिका के दैनंदिन उन्नयन की हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

❋❋❋

लोकवाणी

संभाव्य में मानवीय मूल्यों की झलक है

ब्रह्मा कुमार अरूण
भागलपुर, बिहार
मो0 8084731177

'संभाव्य' का जुलाई-2013 अंक हस्तगत हुआ। आद्योपांत पढ़ा। इस अंक की समग्र सामग्रियां ओजस्वी व प्रभावपूर्ण हैं। समग्र-रूपेण यह अंक पठनीय है। यह अंक हर्ष-विषाद व खट्टा-मीठा का गर्भ है।

शीर्षक 'संस्थापक की कलम से' में मानवीय मूल्यों की महत्ता को विश्व-शांति हेतु आवश्यक बताते हुए इशारे में विश्व-पुरोधाओं को सावधान करने का प्रयास सामयिक है। बधाई है ! बधाई है !!

संपादकीय 'पुरोवाक' में प्राचीन पत्रिकायें 'गंगा' और 'अवंतिका' को उद्धृत कर पत्रकारिता की राह में आनेवाली कठिनाइओं की ओर इशारा किया गया है। साथ ही संगठन की एकता, तप-त्याग, निःस्वार्थ कर्त्तव्य बोध का पाठ पढ़ाकर निरन्तरता बनाये रखने हेतु पगडंडी पर अचल-अडोल रहने की प्रेरणा वाकई उत्प्रेरक है।

शीर्षक 'आओ' छन्द बनें' डा. अश्विनीजी ने जो उदघोष किया है वह उपनिषद के मंत्र 'उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वराण्णिबोधत' ही है। उन्नीसवीं सदी में स्वामी विवेकानंद ने इसी मंत्र द्वारा भारतीय युवाओं का राष्ट्र पुनर्निर्माण हेतु आह्वान किया था। आज डेढ़ सौ वर्षों के बाद अश्विनी जी वही कर रहे हैं। 'छन्द' के माध्यम से महावीर जैसा आचरण अपनाने का आहवान कर रहे हैं।

भाई अश्विनी परमात्म सगाई का सौभाग्य प्राप्त करें।

लघु-शोध 'अंग प्रदेश का हिन्दी साहित्य' एक श्रमसाध्य रचना है। शोधप्रिय छात्रों तथा समस्त सरस्वती पुत्रों के लिए 'लाईट हाऊस' है। प्रदेश के साहित्यप्रेमियों के लिए अमरत्व भरा नया इतिहास है। डा. अमरेन्द्र के प्रति कौन सा भाव प्रकट करूँ। जैसा नाम वैसा काम। वे स्वयं अमर हैं।

सूक्ष्म लोकवासी डा. 'द्विजेन्द्रजी' अंग प्रदेश के साहित्याकाश के सितारे थे और हैं। अलौकिकता से सम्पन्न सरस्वती पुत्र थे। मुझे अपने बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में उनसे स्नेह प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी वाणी इतनी मधुर थी कि स्मरण होते ही तन-मन निहाल हो जाता है। ऐसी विभूति को शत्-शत् नमन करता हूँ।

शीर्षक 'वैचारिक लेख' में सामयिक संदर्भों, आदर्शों, भावों, राष्ट्रहित संकल्पों तथा व्यंग्यों का मनका पिरोया हुआ है। प्रबुद्ध-परिमार्जित संदेशों के लिए झा जी को साधुवाद।

कहानीद्वय - 'शून्य...शून्य...शून्य' और 'आपकी सुनीता' में जीवन की समरसता में आचरण की विषमता तथा रूढ़ी वादिता का विष दिल को मर्माहत करता है। पावन चिंतन से दूषित परंपराओं के परिवर्तन की अपेक्षा है। लेखकद्वय को श्रद्धा अर्पित।

संयुक्ता गुप्ता का ''वैचारिक लेख'' पठनीय-मननीय-ग्रहणीय है। बधाई।

कवितासमूह बहुरंगी किरणों की लड़ी है जिसमें सुख है, आनंद है, ज्ञान है, अपेक्षा है, तृष्णा है, वेदना है, अनादि अनंत का तरंग है तो कोहराम भी है।

डा. प्रो. राजेन्द्र पंजियारा जी की कविता 'बेटियां' की चार पंक्तियां - लोग भूखे भेड़िये अब हो रहे हैं
यौन-सुख की भूख भीषण ढो रहे हैं
बयां कैसे करूँ क्या हालात है अब
बेटियों के प्राण आकुल हो रहे हैं

जिस शासन में शांति नहीं हो और जिस समाज में देवियों का सम्मान नहीं हो, उसे नरकोन्मुख ही कहना उचित है। श्रद्धेय पंजियारा जी वंदनीय हैं।

युवा कवि इंजीनियर सूर्य प्रताप जी 'आज आसमां की

लोकवाणी

महफिल में' देवत्व से लबाबल जिस संस्कृति का इंतजार कर रहे हैं, वह अभी कोसों दूर है। **कुछ अनहद की -** वास्तव में वर्तमान सुविधाभोगी संस्कृति में, तरक्की की आड़ में, पतन की गहरी खाई में एक के बाद एक मानव हर रोज गिर रहे हैं, पर झूठी तरक्की के शोर-शराबे में उनकी चीत्कार दबकर रह जाती है। मानव परिवारों का लज्जाविहीन व्यवहार, स्वतंत्रता के नाम पर हमारी स्वचछन्दता ही जिम्मेवार अंततः संभाव्य परिवार को दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

❋❋❋

'संभाव्य' सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का निदर्शन है

विधुरंजन कुमार सिंह
कल्पनायन, दौलतपुर
पत्रा0 : खानपुरमाल, थाना : सुलतानगंज
जिला : भागलपुर

हिन्दी त्रैमासिक 'संभाव्य' के जुलाई, 2013 का अंक मुझे मिला। मैंने इसे पढ़ा। इस अंक में जितनी भी सामग्रियाँ दी गई है - रूचिकर भी है, सराहनीय भी।

आलेख 'आओ छन्द बने' एवं 'अंग का हिन्दी साहित्य' लघु शोध' निबन्ध के तथ्यों के सौन्दर्य ने मुझे विशेष प्रकार से सम्मोहित किया। कहानियाँ एवं कविताएँ भी अच्छी लगी। सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् का निदर्शन कराना ही तो साहित्य का लक्ष्य है - 'संभाव्य' में मैं संभावनाएँ देख रहा हूँ।

अंग के विद्वत् समाज के मनीषी 'गंगा' के समान ही 'संभाव्य' का पल्लवन एवं पुष्पन करते रहेंगे - ऐसा मैं हार्दिक कामना करता हूँ तथा 'संभाव्य' परिवार के सभी सदस्यों को साधुवाद देता हूँ।

बहुत सारी शुभकामनाओं के साथ।

❋❋❋

विश्व दर्पण से झांकता 'सभाव्य'

अंजली कुमारी
सुपौल, बिहार
मो0 7759927092

पहले ही पन्ने पर विश्व का तस्वीर लिए, जीवन को सार्वजनिकता का आकार देकर, विश्वग्राम के पाठ के साथ, सर्वधर्म सद्भाव की स्याही से सारी दुनिया को स्वीकार कर 'संभाव्य' नाम की यह पत्रिका हमें जीवन में घटित सुख-दुखः की परिभाषा को समझाकर ऐसे बाँधती है कि ''प्रवंचना, वैमनस्यता और पीड़ा'' के लिए यहाँ कोई ठहराव नहीं।

दिल चाहता है कि हर घर की दीवार पर 'संभाव्य' की एक तस्वीर हो और स्वार्थ की दीवारों को तोड़कर एक से अनेक तक पहुँचे जो अहम की भावना से इतनी दूर हो कि जन-जन में इंसान को इंसान समझने की ताकत दे। चाहती हूँ हर चेहरा 'संभाव्य' के आईने में खुद को देखे, सार्वजनिकता की ऊँची दीवारों से विश्व को बाँध ले और फिर जीतने या हारने की वजह न तलाशना पड़े। जीते तो खुशी, हारे तो दूसरों के लिए खुशी। बस इसी भावना से ओत-प्रोत हम सब का अंर्तमन हो।

सच तो यह है कि किसी एक की खुशी या चाहत पर यह दुनिया नहीं चलती। सार्वजनिकता में हर एक व्यक्ति का महत्व होता है। सबके सुख-दुख के मायने अलग होते हैं। पर सुख-दुख जब एक व्यक्ति की परिधि से विश्व समुदाय को अपना परिवार समझकर बाँटा जाय तो जीवन का रूप-रंग निखर जाता है।

उन सारी वजहों का कोई मतलब नहीं होता जिसके लिए हम दूसरों को तकलीफ देते हैं। 'संभाव्य' की यह बातें कि मैं तेरा हूँ तुम मेरे हो'' अध्यात्म से कहीं ऊपर की चीज हो जाती है, क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति की सिर्फ अपने लिए होती है, न कि विश्व समुदाय के लिए। समाज की ऐसी सुंदर परिकल्पना शायद 'संभाव्य' से ही संभव है। इसके अंदर जो संभावना छिपी है वह मानवता की कसौटी को परख कर आगे बढ़ती है। जीवन के सुंदर रूप को बस विश्व दर्पण से झांकता 'संभाव्य' ही देख सकता है। जीवन की धड़कन को सुनने की यह कोशिश हर सहृदय को कहीं न कहीं जिंदा रखा है। पत्रिका के पन्नों से निकलकर जीवन को प्रतिबिम्बित करता 'संभाव्य' वह दर्पण है जहाँ विश्व दिखता है। अतः संभाव्य महज एक पत्रिका ही नहीं, विश्व का दर्पण भी है।

❋❋❋

लोकवाणी

संभाव्य एक अनूठी पत्रिका है

सुनिल कुमार परीट
कर्नाटक
मो0 8867417505

'संभाव्य' के अप्रैल-2013 एवं जुलाई 2013 के दो अंक प्राप्त हुए। पत्रिका को देखकर और पढ़कर ऐसा लगा कि सचमुच यह एक अनूठी पत्रिका है। पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख कहानी, कविता, और निबंध अत्यंत पठनीय और संग्रहनीय हैं। सभी एक से बढ़कर एक हैं। विजेंद्र, राज हीरामन, दीप्ति शर्मा, अभिनव अरूण, स्व. रवीन्द्र रवि की कविताएँ तो दिल में उतर गईं। डॉ0 अमरेन्द्र का 'अंग प्रदेश का हिन्दी साहित्य, लेख से तो अंग प्रदेश की जानकारी प्राप्त हुई। रहीम मिया का लेख भूमंडलीकरण और साहित्य अत्यंत उपयुक्त है। पत्रिका साहित्य जगत में चार चाँद लगा रही है। हम पत्रिका की सफलता की कामना करते हैं, प्रार्थना करते हैं। एक निवेदन है कि रचनाकारों के नाम के साथ फोन नंबर भी डालें ताकि उनसे संपर्क करने एवं प्रतिक्रिया देने में सुविधा हो।

❋❋❋

संभाव्य में मानसिक पोषण की क्षमता है

डॉ. उदयभानु सिंह
एम.बी.बी.एस., एम.डी.

'संभाव्य' हिंदी त्रैमासिक पत्रिका समाज को सुंदर संदेश देती है तथा बुद्धिजीवियों के मानसिक स्वास्थ्य का पोषण करती है। आनेवाले दिनों में यह पत्रिका लोकप्रियता के उत्कर्ष पर होगी। इसप्रकार के सृजनात्मक कार्य के लिए कर्मरत रहने हेतु संभाव्य-प्रबंधन के सदस्यों को बहुत-बहुत बधाई !

❋❋❋

सिलसिला चलता रहे

अशोक मिज़ाज़
सागर, मध्य प्रदेश

'संभाव्य' का नया अंक मिला। पढ़कर बहुत खुशी हुई। हिंदी की सैकड़ों पत्रिकाएँ निकल रही हैं, लेकिन उनमें गिने-चुने और बार-बार एक ही नाम देखने को मिलते हैं। आपकी पत्रिका में अलग-अलग लेखक और कवियों की रचनाओं को पढ़ने का अवसर मिला। पूरी की पूरी पत्रिका नई महसूस हुई।

बहुत-बहुत शुक्रिया। यह सिलसिला चलता रहे।

❋❋❋

शुभकामनायें

अशोक कुमार झा
बिहार शिक्षा सेवा

'संभाव्य' का जुलाई अंक पढ़ा। बाजारू संस्कृति में संभाव्य की सोच को जिंदाभर रखना समाज और साहित्य के लिए महती सेवा होगी। लगनशीलता से लगे रहने के लिए संभाव्य परिवार के सभी सदस्यों को शुभकामनायें एवं साधुवाद !

❋❋❋

fastprint#9430088362
फास्ट PRINT Quality in time
Digital Print • Designs • Multicolour Print